चन्दामामा

माँ - बच्चों का मासिक पत्र

1st July '58

6

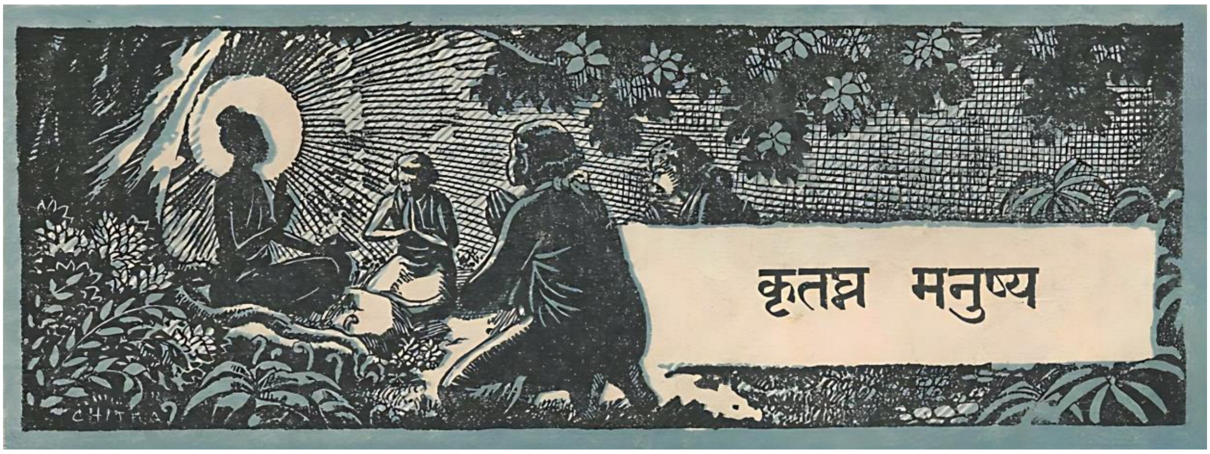

कृतघ्न मनुष्य

राजा ब्रह्मदत्त के ज़माने में काशी में एक बहुत बड़ा रईस रहा करता था। जब उसने नौ करोड़ रुपये पूरे कर लिये, तो उनका एक लड़का पैदा हुआ। इसलिये लड़के का नाम उन्होंने नवकोटी नारायण रखा।

नारायण के पिता ने, जो कुछ लड़के ने माँगा, उसको दिया। उसकी हर इच्छा वह पूरी किया करता। उसकी जो मर्जी होती, करता। वह धूर्त और दुष्टों का सहवास करने लगा। थोड़े दिनों बाद पिता का स्वर्गवास हो गया।

छुटपन से जो कर्ज़ नारायण लेता आया था, बढ़ता गया। महाजनों ने उसे यकायक घेर लिया और अपना कर्ज़ माँगने लगे। उस हालत में, नारायण जीवन से ऊब उठा। और कोई रास्ता नहीं था। उसने आत्म-हत्या कर लेने में ही अपना भला समझा। फिर कुछ सोचने के बाद महाजनों से उसने कहा-"मैं गङ्गा के किनारेवाले पीपल के पेड़ के नीचे रहूँगा। वहाँ हमारे पूर्वजों की निधि गड़ी हुई है। आप अपने दस्तावेज़ों को लेकर वहाँ आइये।"

सब के सब उस पीपल के पेड़ के नीचे जमा हो गये। नारायण निधि को ढूँढ़ता ढूँढ़ता, इधर उधर लड़खड़ाने लगा। महाजनों को कुछ दूरी पर खड़ा देख, वह धड़ाक से 'जय परमेश्वर' कहता गङ्गा में जा कूदा। और देखते देखते गङ्गा का तेज़ पानी उसे बहुत दूर बहा ले गया।

* * * * * *

उन दिनों बोधिसत्व ने एक हरिन का रूप धर रखा था। वह और हरिनों के झुण्ड से अलग, गङ्गा के किनारे, एक घने आम के बगीचे में रहा करता था। वह

हरिण भी और हरिणों से बिल्कुल भिन्न था; सुनहला रङ्ग, चान्दी के सीङ्ग, हीरे के समान आँखें, लाख के खुर। उसमें एक प्रकार का दिव्य सौन्दर्य था।

उस हरिण को आधी रात के समय किसी मनुष्य का विलाप सुनाई दिया। कौन रो रहा है; यह जानने के लिये, सुनहला हरिण, उलटा तैर कर नारायण के पास पहुँच गया।

नारायण को अपनी पीठ पर चढ़ाया और किनारे की ओर वह तैर पड़ा। फिर उसको अपने बाग में ले गया। वह जङ्गल से उसकी भूख मिटाने के लिये कन्द मूल फल इकठ्ठा कर लाया।

कुछ दिनों बाद हरिण ने कहा-"मैं तुम्हें इस जङ्गल से बाहर निकालकर तुम्हारे राज्य का रास्ता दिखा दूँगा। आराम से चले जाओ। परन्तु एक ही एक बात है। महाराजा या कोई और रईस लाख लोभ दिखाये, पर यह न कभी बताना कि फलाने जङ्गल में सोने का हरिण है। बस यही मेरी इच्छा है। इसे निभाना।" नारायण मान गया। उसके वचन का विश्वास कर, हरिण ने उसको अपनी पीठ पर चढ़ाया, और काशी जानेवाले रास्ते पर उसको छोड़ दिया।

* * * *

ठीक जब नारायण काशी नगर में पहुँचा तो वहाँ एक विचित्र घटना घटी। सुनते हैं, उससे पिछली रात महारानी ने सपने में किसी सोने के हरिण को उपदेश देते देखा था। रानी ने जाकर महाराजा से कहा- "अगर सचमुच सोने का हरिण न हो तो भला क्यों वह मुझे स्वप्न में दिखाई देता? हो न हो, ज़रूर ऐसा कोई हरिण है। आप जल्द से जल्द उसे पकड़कर दीजिये; वरना मेरे प्राण नहीं रहेंगे।"

झट राजा ने दरबार बुलवाया। सलाह-मशवरा किया। बहुत सोचने-समझने के बाद उन्होंने यह तय किया: एक हाथी पर हौदा रखा जाय, हौदे में सोने की पिटारी और उसमें हज़ार मोती रखे जायँ। फिर हाथी का जुलूस निकाला जायगा। जो कोई सोने के हरिण के ठिकाने के बारे में जानकारी देगा, उसका सम्मानपूर्वक हाथी पर चढ़ाकर जुलूस निकाला जायेगा।

इस प्रकार की एक घोषणा निकाली गई और शहर शहर में सेनानी यह घोषणा पढ़ रहे थे। ढिँढोरा पीटा जा रहा था। ठीक उसी समय नारायण ने काशी नगर में कदम रखा।

उसने सेनानी के पास जाकर कहा- "आप जिस सोने के हरिण की तालाश कर रहे हैं, उसके बारे में मैं सब कुछ जानता हूँ। मुझे राजा के पास ले जाइये, मैं सब बता दूँगा।"

बाद में, नारायण राजा और उसके दरबारियों को साथ लेकर जङ्गल में गया। सोने के हरिण की रहने की जगह दिखाकर, वह वहाँ से कुछ दूरी पर खड़ा हो गया।

राजा ने दरबारियों से कहा-"हथियार लेकर चारों तरफ़ से घेरो। देखो,

हरिण कहीं बचकर न निकल जाये। होशियार रहना।" सब ने तैयार होकर एक बार शोर किया। हरिण का रूप धारण किये हुये बोधिसत्व ने वह शोर सुना।

शायद कोई बड़ा अतिथि हमारे यहाँ आया है। उसका स्वागत किया जाय।" यह सोचते हुये वह उठा। औरों से बच निकलकर वह सीधा राजा के पास गया।

हरिण की तेज़ चाल को देखकर राजा हैरान रह गया। हरिण पर छोड़ने के

लिये उसने धनुष पर बाण चढ़ाये। तब हरिण ने यों कहा-"राजन्! जल्दी मत करो। पहले यह बताओ कि मेरे रहने की जगह के बारे में तुम्हें किसने बताया है?"

राजा को ये बातें सुन ऐसा लगा, जैसे कोई अमृतवाणी सुनी हो। उसके बाण अपने आप नीचे गिर गये।

बोधिसत्व ने फिर पूछा-"तुम्हें किसने मेरे रहने की जगह के बारे में बताया है?" राजा ने नारायण की ओर दिखाया।

तब बोधिसत्व ने यों उपदेश दिया-"शास्त्रों में लिखा है कि मनुष्यों से बढ़कर इस दुनियाँ में कृतघ्न नहीं है, वह ठीक ही है। जन्तुओं की भाषा समझा जा सकता है, पक्षियों की भी। परन्तु मनुष्यों की भाषा समझ लेना ब्रह्मा के लिये भी साध्य नहीं है। क्योंकि, मनुष्य की किसी बात पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता। मन में कुछ होता है और ज़बान पर कुछ और।" बोधिसत्व ने बताया कि उसने कैसे नारायण की रक्षा की थी, और उसके रहने की जगह के बारे में न बताने का उसने कैसे वचन दिया था।

राजा क्रुद्ध हो उठा-"इस तरह का कृतघ्न इस भूदेवी के लिये ही भार है। एक बाण से ही इसका काम तमाम किये देता हूँ।" उसने बाण निकाला।

बोधिसत्व ने उसको रोकते हुये कहा-"राजा! मत मारो। मारने में क्या रखा है? अगर ज़िन्दा रहा तो कभी न कभी उसे अक्ल आयेगी ही। अपनी घोषणा के अनुसार उसको उसका ईनाम दे दो। यही उचित है।" राजा ने वैसा ही किया।

राजा को तब बोधिसत्व की उदारता और क्षमा का भास हुआ।

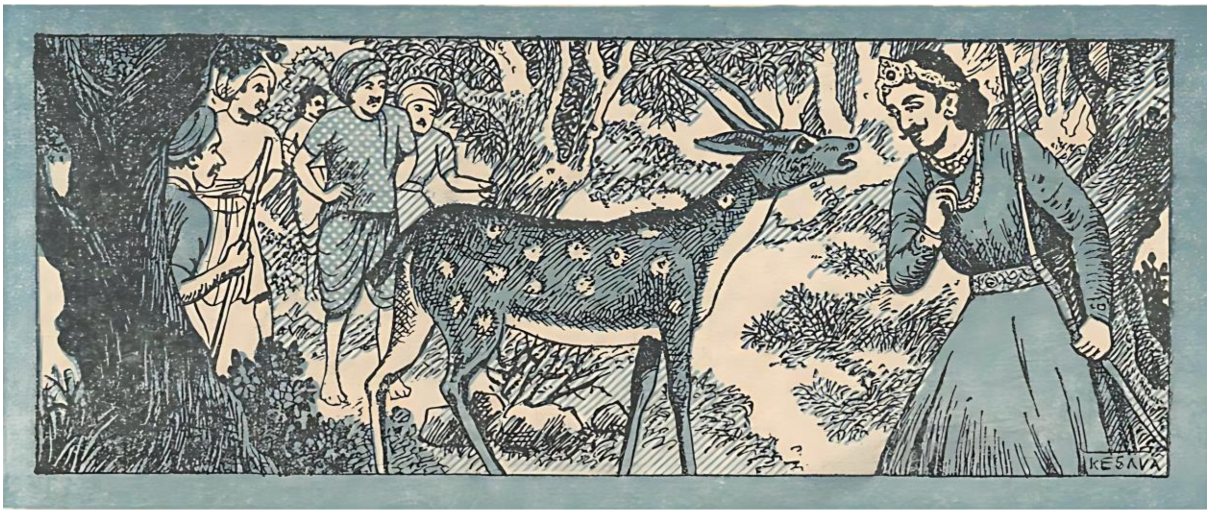

अमरावती नगर में एक गरीब ब्राह्मण परिवार रहा करता था। वह पण्डित-परिवार के नाम से प्रसिद्ध था। क्योंकि उस परिवार का मुखिया, उसकी पत्नी, उसका लड़का और बहू सभी पण्डित थे। माने हुये कवि भी थे। गरीबी से वे तङ्ग आये हुये थे। और जब उनको यह मालूम हुआ कि राजा भोज पण्डितों का आदर-सम्मान करता है, तो वे चारों के चारों धारा नगरी गये। जब वे धारा नगरी से थोड़ी ही दूर थे, एक ब्राह्मण ने परिवार के मुखिया से पूछा-"आप कहाँ जा रहे हैं?"

"समस्त, वेद, वेदाङ्ग, पुराणों में पारङ्गत राजा भोज का दर्शन करने।" पिता ने कहा।

"वेद, पुराणों की तो बात अलग, राजा भोज ठीक तरह अक्षर भी नहीं पढ़ पाता है। नहीं तो, ब्रह्मा की लिखी हुई, दारिद्य रेखा को मेरे ललाट पर पढ़कर भी उसने मुझे इतना धन दिया है।" कहकर वह ब्राह्मण हँसता हँसता वहाँ से चला गया।

यह बात सुनते ही पण्डित परिवार को बहुत खुशी हुई। उन्हें मालूम हो गया कि राजा भोज सचमुच महान दानी हैं, और गरीबों के प्रति दया और आदर भी दिखाते हैं। वे सोचने लगे कि उनका भाग्य भी अवश्य खिलेगा।

परदेसी राजा की आज्ञा के बिना नगर में नहीं घुस सकते थे। इसलिये पण्डित परिवार ने नगर के बाहर, एक पीपल के पेड़ के नीचे अपना बसेरा किया, और राजा के पास ख़बर पहुँचवाई। थोड़ी देर बाद, राजा के नौकर ने एक लोटे में दूध लाकर कहा-"राजा ने

श्री दुर्गाशङ्कर त्रिपाठी

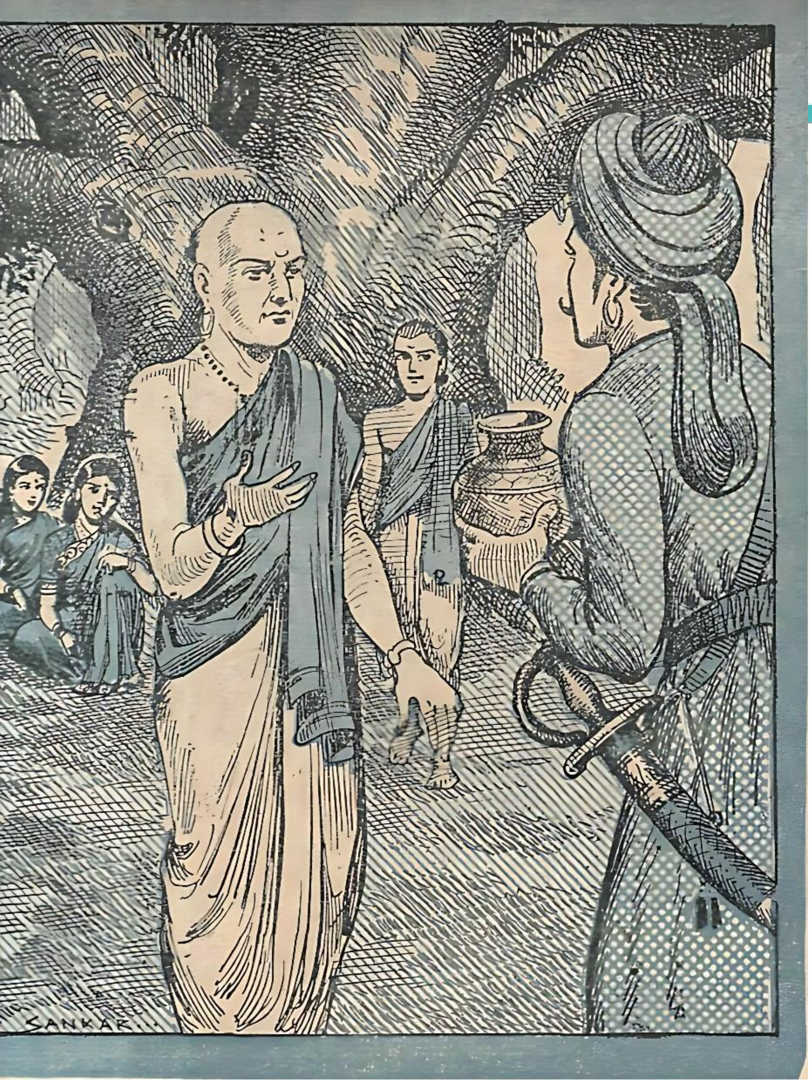

आपको यह देने के लिये कहा है।" उसने लोटा परिवार के मुखिये को दे दिया और कुछ न कहा।

"हमारे नगर में दूध के समान पण्डित हैं, महान विद्वान हैं। भला आपके लिये कहाँ जगह?" यह राजा भोज का मतलब था। ब्रह्माण राजा का मतलब ताड़ गया। उसने दूध में थोड़ा शक्कर मिलाकर नौकर से कहा-"जाओ, इसको ले जाकर राजा को दो।"

"आपके नगर के पण्डितों में, हम भी दूध में शक्कर की तरह घुल-मिल जायेंगे। यही नहीं, उनके पाण्डित्य को मिठास भी देंगे।" यह ब्राह्मण का मतलब था। यह जानकर राजा भोज को सन्तोष हुआ। वे ब्राह्मण की बुद्धिमत्ता को सराहने लगे।

फिर भी उसने इस पण्डित परिवार की और भी परिक्षा करनी चाही। इसलिये उसने अपने शाही कपड़े निकालकर मामूली कपड़े पहन लिये, और सूर्यास्त के समय वह पीपल के पेड़ के पास गया। वहाँ राजा भोज को केवल सास और बहू ही दिखाई दीं। यह अनुमान कर कि पिता और पुत्र सन्ध्या करने के लिये नदी किनारे गये हुये होंगे, वह भी वहाँ गया। वहाँ उसे ब्राह्मण का लड़का दिखाई दिया। राजा ने उसकी तरफ़ ऐसे देखा, जैसे कोई प्रश्न पूछ रहा हो। राजा नदी का पानी ओक से पीने लगा।

इस तरह पानी पीने से राजा भोज का मतलब था: "इस तरह समुद्र का पानी पीनेवाले अगस्त्य की तरह तुम भी ब्राह्मण हो न?"

ब्राह्मण ने राजा भोज का अर्थ जान, वेष बदले हुये राजा को इस प्रकार देखा, मानों वह भी एक प्रश्न पूछ रहा हो।

उसने एक पत्थर उठाकर पानी में फेंका। "समुद्र में पहाड़ फेंककर, समुद्र पर पुल बाँधनेवाले रामचन्द्र जी की तरह तुम भी क्षत्रिय हो न?" यह उसका मतलब था।

राजा भोज यह समझ गया और बहुत सन्तुष्ट हुआ। वह अपने महल में चला गया। परन्तु वह इस पण्डित परिवार की और परीक्षा करना चाहता था। उनकी कविता-शक्ति को बिना परखे उसको चैन न थी। उसने लकड़हारे का वेष धरा। सिर पर लकड़ियों का गट्ठर रख, नगर के दरवाज़े बन्द कर देने से पहले वह बाहर आ गया और पीपल के नीचे बैठे हुए पण्डित परिवार के साथ जा मिला।

"मुझे जङ्गल में देर हो गई। नगर के फाटक बन्द कर दिये गये हैं। आप जिस दाम पर चाहे, मेरे लकड़ियों के गट्ठर खरीद लीजिये और मुझे रात भर अपने साथ रहने दीजिये।" राजा भोज ने परिवार के मुखिया से हाथ जोड़कर प्रार्थना की। ब्राह्मण उसे पहचान न पाया।

उस ब्राह्मण ने जो थोड़ा बहुत पैसा था, उसको दिया और कहा -"अच्छा, तो

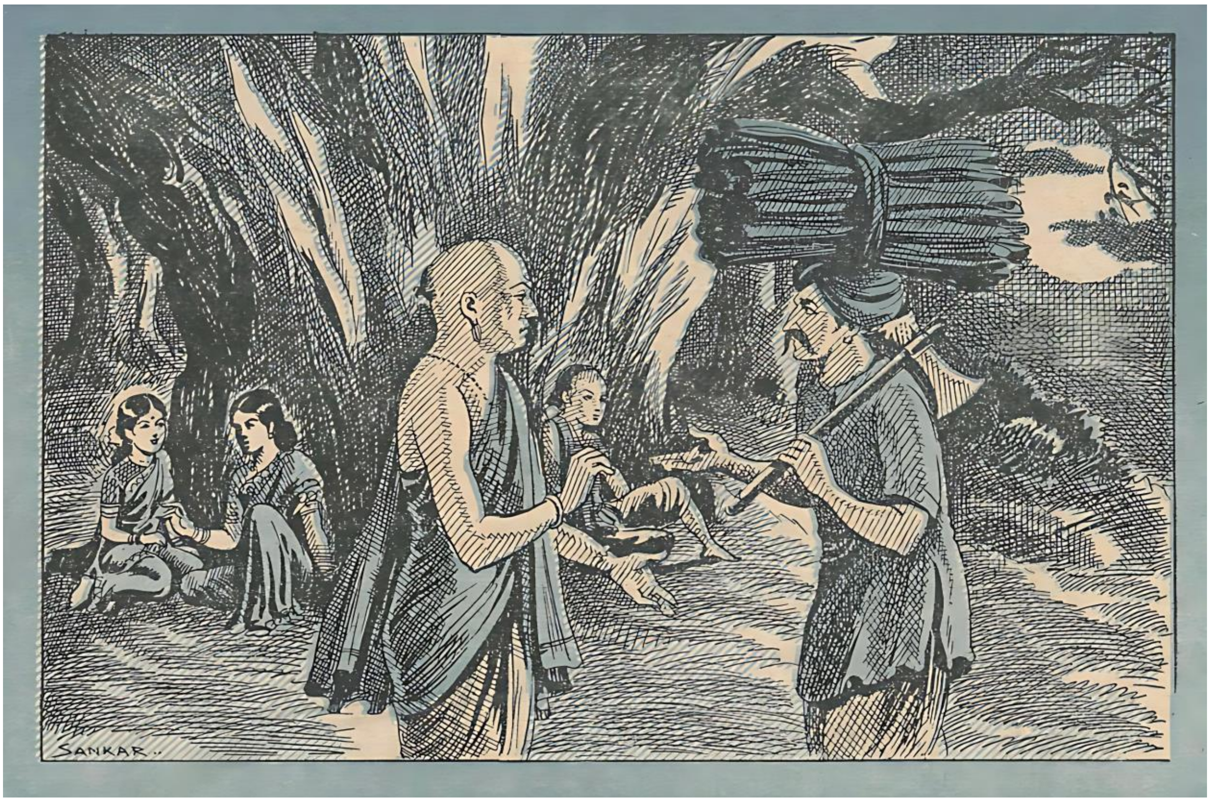

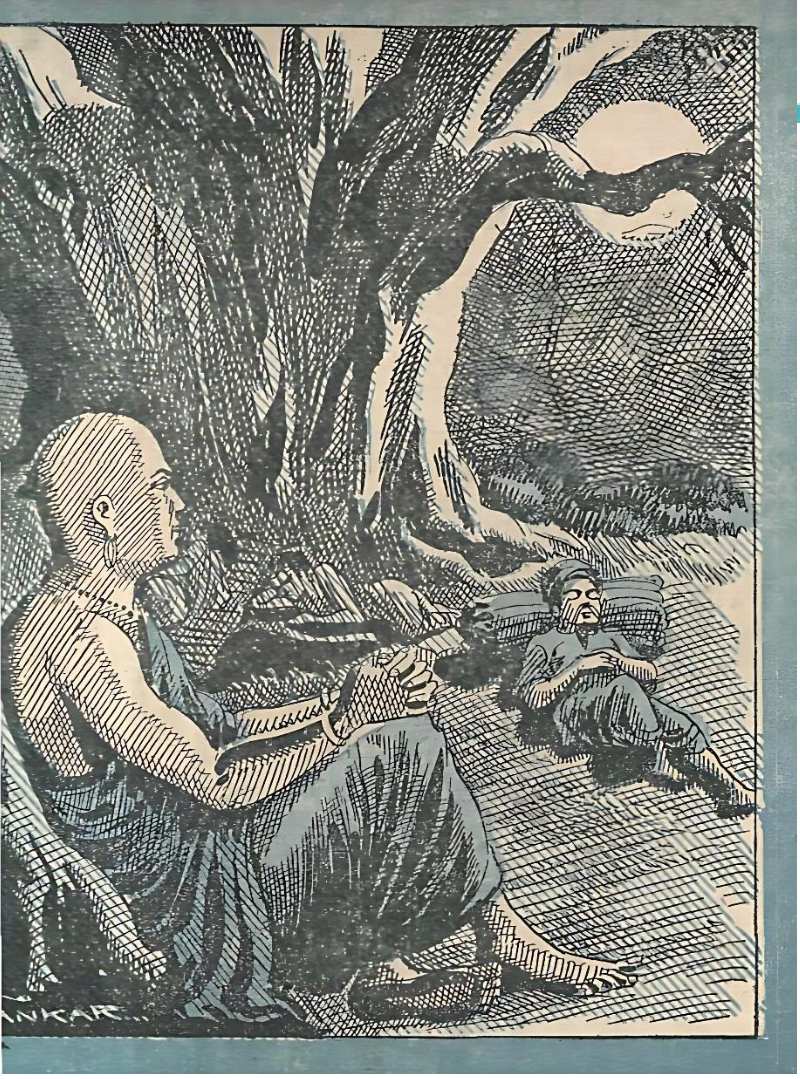

खैर, यहीं ठहरो बेटा! क्या यह हमारे बाप-दादाओं की जगह है ?"

रात में क्योंकि चोरों का डर था, इसलिये सब के सब एक साथ नहीं सोये। एक एक करके उन्होंने पहरा देने का निश्चय किया। पहिली बारी पिता की थी। इसलिये तीनों सो गये।

थोड़ी देर बाद, वेष बदले हुये राजा भोज ने कहा-"असारे खलु संसारे, सारमेतत्रयं स्मृतं"। यानी, इसका मतलब था-"इस निस्सार संसार में तीन ही चीज़ों को सारवान् कहा गया है।"

यह सुन जागे हुये ब्राह्मण ने कहा- "काश्यां वासः सतां सेवा, मुरारे स्मरणं तथा।" इसका अर्थ है-"काशी में रहना, सज्जनों की सेवा करना, भगवान का नाम स्मरण करना।"

भोजराज यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और बिना कुछ कहे, सो गया। फिर एक पहर खतम होने के बाद, ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को जगाया और स्वयं सो गया।

थोड़ी देर बाद राजा भोज गुन गुनाने लगा-"असारे खलु संसारे सारमेतद्वयं स्मृतं"। इस निस्सार संसार में दो ही सारवान् वस्तु समझी जाती हैं।

यह सुन ब्राह्मण की पत्नी ने कहा- "कसार इशर्करा युक्तः कंसारि चरण द्वयं।" अर्थात मीठे से बने पकवान और कृष्ण के पैर।

तीसरे पहर जब ब्राह्मण का लड़का पहरा दे रहा था, तब राजा भोज ने फिर यों कहा-"असारे खलु संसारे सारं श्वशुर मन्दिरं।" अर्थात् इस निस्सार संसार में सारवान ससुर का घर है।

तब ब्राह्मण के लड़के ने इस समस्या का यों हल किया-"हरिश्शेते हिमगिरौ, हरि-

श्शेते पयोनिधौ"। शिव अपने ससुर के घर हिमालय पर लेटा हुआ है और विष्णु अपनी ससुराल दुग्ध सागर में लेटा हुआ है।. शिव की पत्नी पार्वती, हिमालय की पुत्री है, विष्णु की पत्नी लक्ष्मी दुग्ध सागर में पैदा हुई थी।

यह सुनकर राजा भोज के सन्तोष की सीमा ही न रही। क्योंकि चौथी बारी बहु की थी, उसके उठते ही राजा भोज ने कहा-"असारे खलु संसारे सारं सारंगलोचना"। अर्थात्, इस निस्सार संसार में स्त्री ही एक सार है।

यह सुन ब्राह्मण की बहू ताड़ गई कि यह लकड़हारा राजा भोज ही है। उसने यों जवाब दिया-"यस्याः कुक्षौ समुत्पन्नो, भोजराज भवादृशः"। "हे राजा भोज! जिस स्त्री की कोख से आप जैसे व्यक्ति पैदा हों, वह स्त्री ही इस निस्सार संसार में सारवती है।" यह बात कान में पड़ते ही, राजा भोज, झट उस अन्धेरे में ही अपने महल में चला गया। उसे उनकी और परीक्षा लेने की आवश्यकता न थी।

सबेरे होते ही, पण्डित परिवार को दरबार से निमन्त्रण पहुँचा। निमन्त्रण को पाकर पण्डित परिवार का हर सदस्य बहुत प्रसन्न हुआ। वे समझ गये कि राजा भोज वेष बदलकर उनकी परीक्षा लेने के लिये आया था, और परीक्षा में वे उत्तीर्ण हुये। सब तुरन्त दरबार में गये।

राजा भोज ने पण्डित परिवार की बड़े आदर के साथ आवभगत की। उसने उनकी प्रशंसा की, और कहा कि पण्डित परिवार का हर सदस्य समानरूप से पण्डित था।

बाद में उसने उनको माहवारी वेतन पर अपने दरबार में रख लिया।

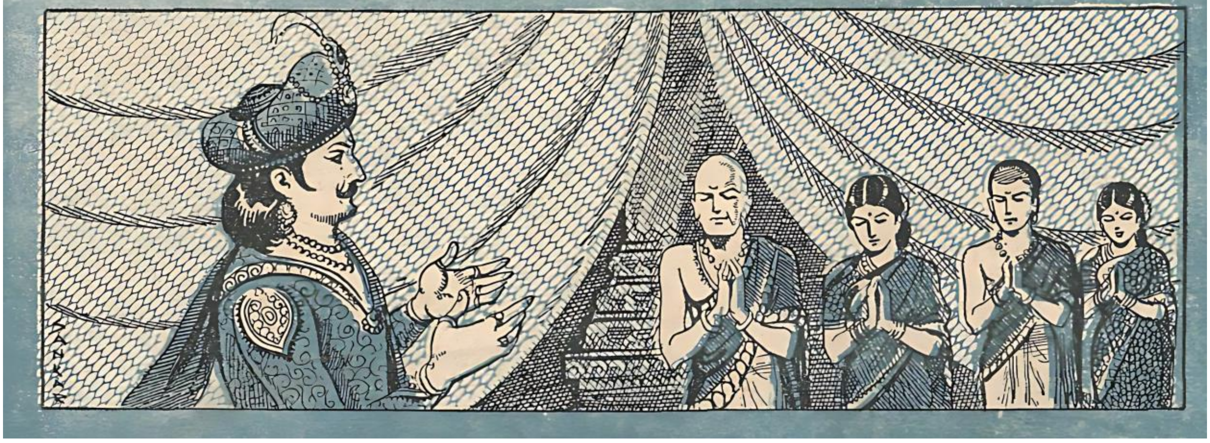

उन दिनों तक्षशिला का राजा कलिङ्गदत्त था। वह बौद्ध धर्मावलम्बी था। परन्तु उसके राज्य में वैदिक धर्म के अनुयायी भी काफ़ी थे। राजा उनको बौद्ध-मत स्वीकार करने के लिये बाधित भी न करता था। पर जो कोई उसके पास बौद्ध-धर्म के बारे में जानने के लिये आता तो वह उसे बुद्ध का उपदेश दिया करता।

इस प्रकार बौद्ध मत को स्वीकार करनेवालों में वितस्तादत्त नाम का एक रईस भी था। परन्तु उसके लड़के, रत्नदत्त को वैदिक धर्म में ही विश्वास था। इसलिये वह हमेशा पिता को डाँटता-उपटता रहता।

"तुम पापी हो। इसीलिये तुमने वैदिक-धर्म छोड़ दिया। ब्राह्मणों की पूजा छोड़ बौद्ध भिक्षुओं की पूजा कर रहे हो। भला तुम पर भी ऐसे वाहयात धर्म का क्या जादू है, जिसको माननेवाले या तो सिर घुटाकर, मैले-कुचले कपड़े पहन, भिखारी बने फिरते हैं, या ऐरे-गैरे सब मिल-मिलाकर, मठ में आराम से रहते हैं; न कोई जात, न धर्म, न पूजा-पाठ।"

लड़के की बात सुन, पिता सहम उठता और कहा करता-"बेटा! तुम बाह्य आडम्बर को ही धर्म समझे बैठे हो। क्या जन्म से ब्राह्मण होते हैं? क्या वे ब्राह्मण नहीं हैं, जिन्होंने क्रोध आदि को छोड़ दिया हो, सत्य अहिंसा का निष्ठा के साथ पालन कर रहे हों? क्यों इस धर्म की तुम निन्दा करते हो, जो प्राणी मात्र को अभय-प्रदान करता है?"

परन्तु रत्नदत्त को पिता की एक बात भी अच्छी न लगी। वह पिता को नीच

कुमारी विमला माथुर

और तुच्छ समझने लगा। पिता-पुत्र में क्योंकि प्रेम घट गया था, इसलिये उनका पारिवारिक जीवन भयङ्कर हो गया था। रत्नदत्त ने व्यापार आदि में, पिता की सहायता करना छोड़ दिया। इसलिये तङ्ग हो वितस्तादत्त ने राजा के पास जाकर अपने लड़के की बात कही।

सब सुनने के बाद राजा ने कहा- "किसी न किसी बहाने अपने लड़के को कल दरबार में लाना। जो कुछ करना होगा, तभी मैं सोच-सोचकर करूँगा...।"

व्यापारी अपने लड़के को अगले दिन दरबार में ले गया। राजा ने इस प्रकार अभिनय किया, मानों वह बहुत क्रुद्ध हो। उसने सैनिकों को आज्ञा दी-"इस पापी देशद्रोही का तुरन्त सिर काट दो।"

रत्नदत्त मारे भय और आश्चर्य के परेशान हो गया। उसका पिता राजा के सामने गिड़गिड़ाने लगा- "महाराज! जल्दी मत कीजिये। ठीक सोच साचकर, जो कुछ आपको करना है, कीजिये।"

"अच्छा, तो दो महीने तक इसका सिर न काटो। दो महीने बाद इसको

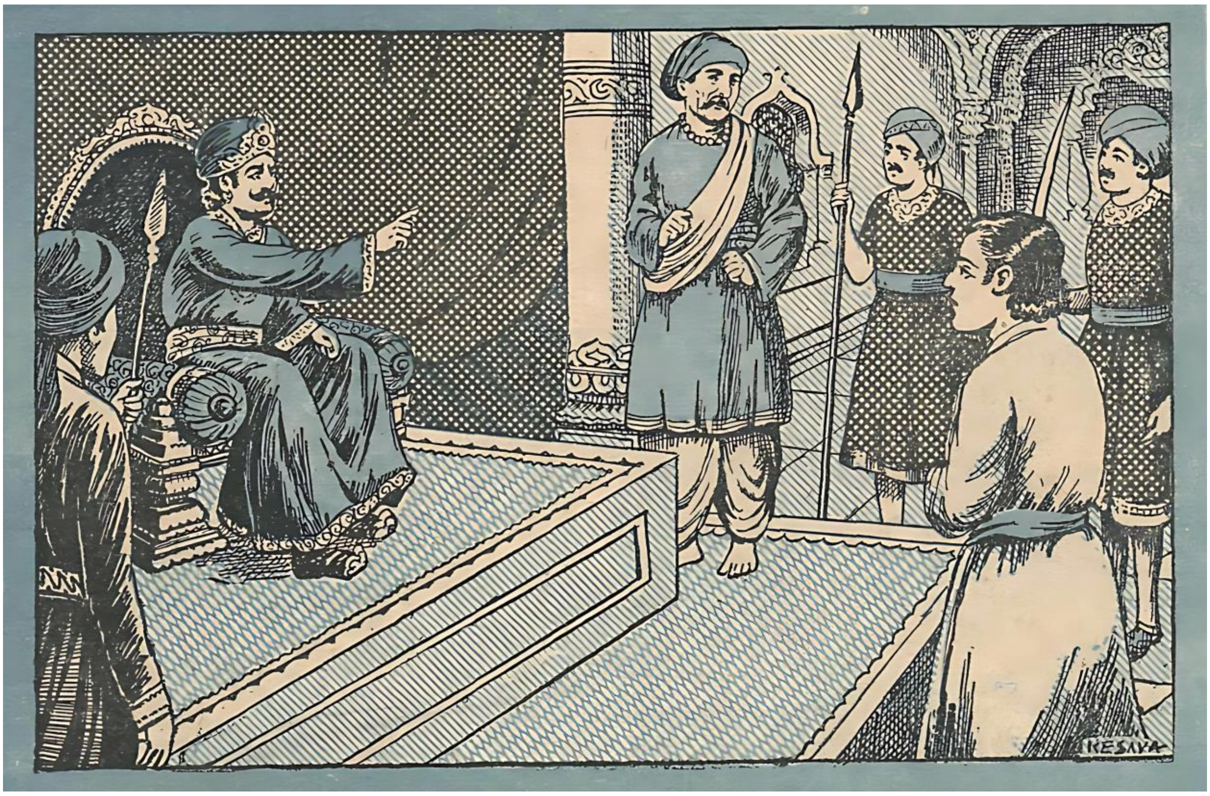

हमारे सामने उपस्थित करो। अब इसे घर ले जाओ।" राजा ने कहा।

रत्नदत्त घर पहुँचकर सोचने लगा- "मैंने राजा का क्या अपकार किया है? वह मुझे क्यों मरवा रहा है?" उसने बहुत कुछ सोचा, पर कुछ सूझा नहीं। राजा के दिये हुये दण्ड के कारण उसकी हालत बुरी हो गई। वह व्यथित और विह्वल हो गया था। उन दो महीनों में, न उसने कभी ठीक खाना ही खाया, न सोया ही। वह सूखकर काँटा हो गया।

दो महीने पूरे हो जाने के बाद व्यापारी ने अपने लड़के को राजा के सामने हाज़िर किया। रत्नदत्त को देखते ही राजा ने पूछा-"अरे, यह क्या? तुम तो मुरदे की तरह हो गये हो। क्या भोजन नहीं कर रहे हो? मैंने तुम्हें भोजन न करने के लिये तो नहीं कहा था।"

"महाप्रभू! जबसे आपने मुझे मरण-दण्ड दिया है, मुझे तो ऐसा लग रहा है, मानों खाने, पीने, मानों खाने, पीने, सोने से भी मुझे मना कर दिया हो। मौत के भय से ही मैं इस प्रकार हो गया हूँ।" रत्नदत्त ने जवाब दिया।

"अच्छा तो, अब जान गये, मौत का भय क्या होता है? ज़िन्दगी कितनी प्यारी होती है? हर प्राणी की भी तो ज़िन्दा रहने की इच्छा होती है। अब तुम ही बताओ, उन प्राणियों की रक्षा करनेवाला कौन-सा धर्म हो सकता है?" राजा ने कहा।

रत्नदत्त की आँखें खुलीं। उसे बुद्धि आई। वह तुरन्त राजा के पैरों पड़ गया, और उसे बौद्ध-धर्म के बारे में उपदेश देने के लिये कहा। कलिङ्गदत्त ने रत्नदत्त को बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी।

[ध्वंसावशेष नगर से भागते भागते व्याघ्रदत्त और समरसेन का एकक्षी से सामना हो गया था न? तब समरसेन मान्त्रिक की नज़र बचाकर भाग गया था। एकाक्षी को विश्वास हो गया कि दुश्मन के साथी समरसेन को मारने के लिये व्याघ्रदत्त की सहायता बहुत उपयोगी होगी। बाद में]

व्याघ्रदत्त से मान्त्रिक एकाक्षी ने सारी परिस्थिति मालूम कर ली। वह यह जान गया कि उसकी तरह वह भी धन-राशि से भरी नाव के लिये प्रयत्न कर रहा था।

"क्या तुम्हें मालूम है कि धन-राशि से भरी नाव को पा लेना मनुष्य के बस की बात नहीं है?" एकाक्षी ने व्याघ्रदत्त से पूछा।

सिर हिलते हुये व्याघ्रदत्त ने जवाब दिया-"शाक्तेय का त्रिशूल जो है?"

शाक्तेय के त्रिशूल का नाम सुनते ही एकाक्षी चौकन्ना हो गया। उसका ख्याल था कि सिवाय उसके और चतुनेत्र के कोई भी त्रिशूल के बारे में कुछ न जानता था।

प्राण के भय से व्याघ्रदत्त ने साफ साफ़ कह दिया कि ध्वंसावशेष नगर के, हाथियों के जङ्गल में, विष वृक्ष से सौ गज़ दूर, गुरु-द्रोही के अस्थि-पञ्जर में त्रिशूल रखा हुआ है। जब व्याघ्रदत्त ने यह बताया

कि शिवदत्त भी उसकी खोज कर रहा है, और समरसेन भी खोजता खोजता वहाँ पहुँच गया होगा, तब एकाक्षी गुस्से के कारण लाल पीला होने लगा।

"व्याघ्रदत्त! इस काम को करने के लिये हमें एक दूसरे की मदद करनी होगी। चतुर्नेत्र नाम का एक छोटा-मोटा मान्त्रिक इस बात में समरसेन की मदद कर सकता है। इसलिये अच्छा है, हम पहले खण्डहरवाले नगर में पहुँच जाएँ। आओ, आगे आगे रास्ता दिखाओ।" एकाक्षी ने कहा।

आगे आगे व्याघ्रदत्त और उसके सैनिक चलने लगे; पीछे पीछे एकाक्षी अपने अनुचरों के साथ जाने लगा। कुछ दूर जाने के बाद एकाक्षी ने अपने अनुचरों को देखकर आज्ञा दी-"कपाल! कालभुजङ्ग! तुम पहले जाकर समरसेन को ढूँढ निकालो।" उनके जाने के थोड़ी देर बाद ही व्याघ्रदत्त को उल्लू का चीत्कार सुनाई दिया। वह घबरा गया। एकाक्षी के सिर पर मँडराता हुआ उल्लू चिल्लाने लगा-"चतुर्नेत्र, एकाक्षी, एकाक्षी।"

एकाक्षी भी भय से काँपने लगा। उसने बायें हाथ से आँखें मूँदी और दायें हाथ से हवा में तलवार घुमानी शुरू की। कँपती आवाज़ में चिल्लाने भी लगा-"कपाल, कालभुजङ्ग।" उसके बहुत चिल्लाने पर भी उसके अनुचर पास न आये। वह अभी सोच ही रहा था कि क्या किया जाय कि इतने में उल्लू वहाँ से उड़ गया।

व्याघ्रदत्त और एकाक्षी ने हाथियों के जङ्गल में प्रवेश किया। तब व्याघ्रदत्त ने एकाक्षी से कहा-"एकाक्षी महाशय! यही हाथियों का जङ्गल है। यह विषवृक्ष ऐसा लगाता है, मानों इसका हर पत्ता

नाग की तरह फ़ण उठाकर फूँफकार रहा हो। यह जो सामने समाधि दिखाई दे रही है, इसी के नीचे शाक्तेय का त्रिशूल है।"

यह सुन एकाक्षी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अच्छा, व्याघ्रदत्त! तुम अपने सैनिकों के साथ शिवदत्त का मुकाबला करो।" उसने व्याघ्रदत्त का हौसला भी बढ़ाया।

व्याघ्रदत्त ने न आगे देखा, न पीछे। इने-गिने अपने सैनिकों के साथ शिवदत्त के अनुयायियों पर कूद पड़ा।

शिवदत्त के अनुयायी, संख्या में व्याघ्रदत्त के सैनिकों से तिगुने थे। इस कारण से व्याघ्रदत्त के सैनिक एक एक करके उनकी तलवारों के शिकार होने लगे।

यह देखकर एकाक्षी को आनेवाले ख़तरे के बारे में आशङ्का होने लगी। वह चिल्लाने लगा-"कपाल....! काकभुजङ्ग... !" देखते देखते वहाँ कपाल और कालभुजङ्ग आ पहुँचे। शिवदत्त के अनुयायी उनको देखते ही सिर पर पैर रखकर भागने लगे। "व्याघ्रदत्त! हमारे लिये अच्छा मौका है। खोद खादकर जल्दी पता लगाओ कि शाक्तेय का त्रिशूल कहाँ रखा हुआ है।" एकाक्षी ने कहा।

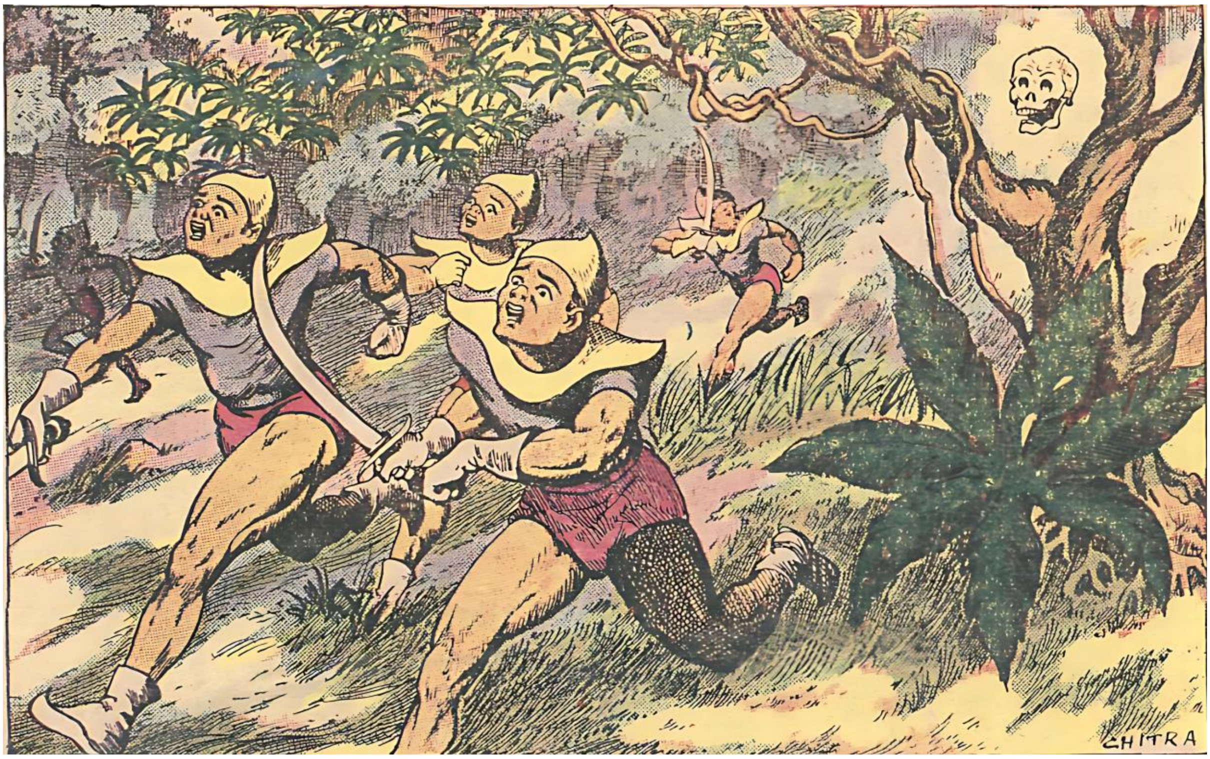

व्याघ्रदत्त को भी विश्वास हो गया कि उसी की विजय अवश्य होगी। समरसेन और चतुर्नेत्र के वहाँ आने से पहिले ही वह त्रिशूल हथिया सकेगा। उसने अपने सैनिकों को एकत्रित किया और आगे कूदकर स्वयं मृतवीरों की सामाधि खोदने लगा। मगर विष-वृक्ष से किसी के कराहने की ध्वनि आने लगी। फ़ण उठाये साँप की तरह उस वृक्ष के पत्ते फूँफकारने लगे।

एकाक्षी पेड़ के पास गया। तलवार उठाकर, वह अभी मन्त्र पढ़ ही रहा था कि उसको व्याघ्रदत्त का आर्तनाद सुनाई दिया। एकाक्षी ने पीछे मुड़कर देखा। चतुर्नेत्र का अनुचर नर-वानर उसे हाथ से पकड़कर घुमा रहा था। उल्लू "एकाक्षी एकाक्षी" चिल्लाता विषवृक्ष की ओर चला आ रहा था।

एकाक्षी घबरा गया। इससे पहिले कि वह शाक्तेय का त्रिशूल ले सकता, चतुर्नेत्र और सैनिकों को लेकर समरसेन वहाँ पहुँच सकता था। वह डरने लगा। उसने काल भुजङ्ग को बुलाकर नर-वानर से भिड़ने के लिये कहा। दूर पत्थरों पर व्याघ्रदत्त को फेंककर नर-वानर कालभुजङ्ग से मुकाबला करने लगा। इधर उल्लू भी कपाल से लड़ने लगा।

एकाक्षी का भय सच निकला। चतुर्नेत्र "उलूका, नर-वानर" कहता कहता वहाँ आ ही गया। समरसेन के साथ कुछ सैनिक भी थे। भागते हुये शिवदत्त और उसके अनुचर भी फिर उसी तरफ चले आ रहे थे। बचे-खुचे व्याघ्रदत्त के सैनिक उनको रोक रहे थे।

काल भुजङ्ग के जहरीले दान्तों से बचते हुये, नर-वानर एक बड़े पत्थर से उसे मारने लगा। उल्लू भी कपाल के पञ्जे से बच बच कर उसको काटने नोचने लगा।

कहीं ऐसा न हो कि मामला और बिगड़ जाय, एकाक्षी तलवार लेकर चतुर्नेत्र पर कूदा। चतुर्नेत्र भी बिना किसी डर के उसका मुकाबला करने लगा। इस बीच में, चतुर्नेत्र की सलाह पर समरसेन सैनिकों को साथ लेकर समाधि खोदने लगा।

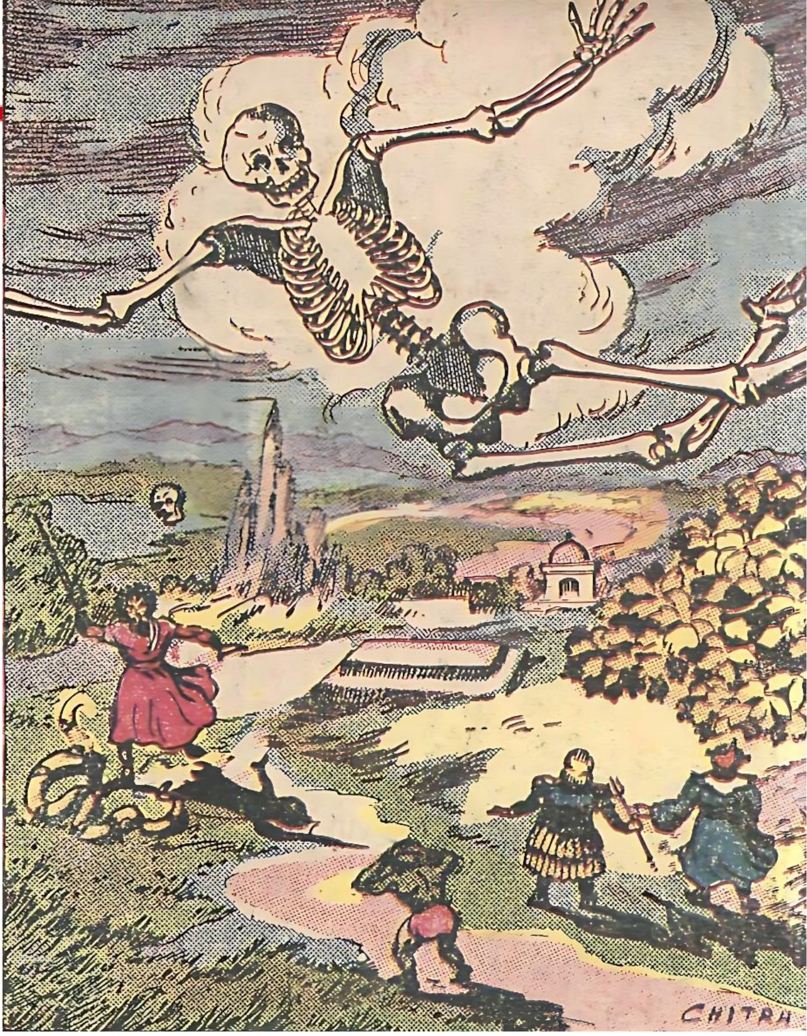

जब वह मृत वीरों की समाधियाँ खोद रहा था, तब समरसेन को अन्दर से विचित्र प्रकार का अट्टहास और रुदन सुनाई देने लगा।

समरसेन डरा नहीं। अपने सरदार का साहस देखकर जैसे तैसे सैनिकों ने समाधियाँ खोद डालीं।

समाधि के नीचे एक ही एक अस्थि-पञ्जर था। समरसेन ने अनुमान किया कि वह गुरु द्रोही का ही अस्थि-पञ्जर था। उस अस्थि पञ्जर की छाती पर, शाक्तेय का त्रिशूल गड़ा हुआ दिखाई दिया। काँपते हाथों से समरसेन ने अस्थि-पञ्जर में से त्रिशूल बाहर निकाला। तुरन्त अस्थि-पंजर हवा में उठा और चक्कर काटने लगा। "गुरु शाक्तेय! आज से मैं शाप विमुक्त हो गया हूँ। मैं फिर शमन द्वीप को चला जा रहा हूँ।" कहता कहता वह वहाँ से उड़ गया।

अस्थिपञ्जर को, उस तरह उठकर आकाश में उड़ता देख, सब का कलेजा थम-सा गया। तलवार हाथ में लिये एकाक्षी उड़ते हुये अस्थि-पञ्जर की ओर ताकने लगा। लड़खड़ाता हुआ समरसेन चतुर्नेत्र के पास पहुँचा और उसके हाथ में अपूर्व शक्तिवाले शाक्तेय के त्रिशूल को सौंप दिया।

जब एकाक्षी की नज़र अस्थि-पञ्जर से चतुनैत्र की ओर गई तो उसको चमकता हुआ त्रिशूल दिखाई दिया। उसके मुख से चीख निकली- "कालभुङ्ङ्ग, कङ्काल !" कहता कहता वह वहाँ से भागने लगा।

CHITRA

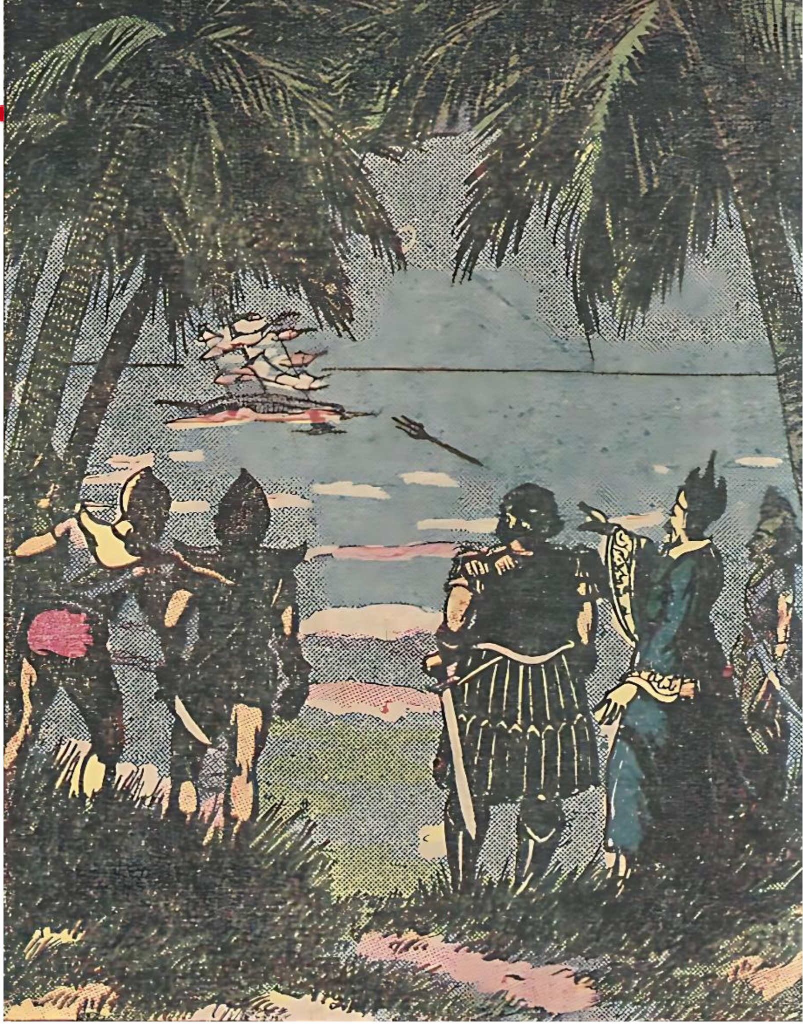

"चतुनैत्र, उस पापी को ज़िन्दा न जाने दो। उसको तुरन्त मार डालो।" समरसेन ने कहा। तब चतुर्नेत्र ने हँसते हुये बताया-"समरसेन! वह एकाक्षी कहीं न जा सकेगा। हम जब चाहे तब, चाहे वह कहीं भी छुपा हुआ हो, इस त्रिशूल द्वारा उसे मार सकते हैं।" उसने एकाक्षी की ओर त्रिशूल फेंकते हुये कहा-"गुरुद्रोही के इस भाई को मार डालो।"

त्रिशूल विद्युत की तरह हवा में उड़ा। देखते देखते, भागते हुये एकाक्षी के पास पहुँचा और ज़ोर से उसकी छाती में घुस गया। "हाय मरा!" चिल्लाता, चिल्लाता, एकाक्षी नीचे गिर गया। दूसरे क्षण त्रिशूल चतुर्नेत्र के पैरों के पास आकर गिर पड़ा।

"चतुर्नेत्र! एक और काम। इस कपाल और कालभुजङ्ग को भी खतम करो।" समरसेन ने उत्साह से कहा।

"एकाक्षी के मरने के बाद ये कपाल और कालभुजङ्ग किसी का नुकसान नहीं कर सकते।" चतुर्नेत्र ने कहा।

तब चतुर्नेत्र ने कहा-"समरसेन! हमें यहाँ समय नहीं खराब करना चाहिये। तुरन्त हमें पूर्वी किनारे पर पहुँचकर धन-राशि से भरी नाव पर अधिकार कर लेना चाहिये।"

जङ्गली रास्तों से पहाड़, घाटी पारकर वे पूर्वी किनारे पर पहुँच। धन-राशि से भरी नाव, और उसका पहरा देनेवाली नाग-कन्या, हमेशा की तरह समुद्र में तैरती-डूबती नज़र आयीं।

चतुर्नेत्र ने शाक्तेय के अपूर्व शक्तिवाले त्रिशूल को नाव की तरफ़ फेंका। त्रिशूल अग्नि की तरह नाव पर लगा। तुरन्त नाग-कन्या ने नाव को किनारे पर लगाया।

"मैं शमन द्वीप के राजा शाक्तेय का शिष्य हूँ। यह मन्त्र-शक्ति से पूर्ण उसका त्रिशूल है। गुरु की आज्ञा तो जानती ही हो। तुम आज से मेरी पत्नी हो।" चतुर्भेत्र ने नाग कन्या से कहा।

चतुर्नेत्र की यह बात सुनते ही, नाग-कन्या नाव छोड़कर चतुर्नेत्र के पास खड़ी हो गई। दोनों का पाणिग्रहण हुआ। सरसेन और उसके सैनिकों ने उनका जय जयकार किया। तब चतुर्नेत्र ने समरसेन की ओर मुड़कर कहा-"आज से हम पति-पत्नी हैं। इस मन्त्र-वाले द्वीप में आराम से हम समय बिताना चाहते हैं। समरसेन ! जिस काम पर तुम आये थे, वह भी हो गया है। धन राशि के साथ तुम भी कुण्डलिनी द्वीप वापिस जा सकते हो।"

झट समरसेन यात्रा की तैयारी करने लगा। उसने चतुर्नेत्र को नमस्कार कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। चतुर्नेत्र ने उसको आशीर्वाद दिया और नाग-कन्या के साथ वह जङ्गल में चला गया।

यह सोचकर कि भयङ्कर हिंस्रक जन्तुओं से भरा भूकम्पोंवाला "मन्त्रद्वीप" उनके रहने योग्य नहीं है, शिवदत्त और उसके अनुयायी भी समरसेन के साथ कुण्डलिनी द्वीप के लिये रवाना हुये। निर्मल, शान्त समुद्र में एक मास यात्रा कर, एक दिन प्रातः काल को सब के सब कुण्डलिनी द्वीप पहुँचे।

कुण्डलिनी द्वीप के राजा चित्रसेन, प्रजा और सैनिकों ने समरसेन का खूब स्वागत किया, क्योंकि बहुत सालों बाद वह स्वदेश लौटा था। वह न स्वयं जीते जी आया था, आपितु धनराशि से भरी नाव भी लाया था। इसलिये सबको परमानन्द हुआ।

[समाप्त]

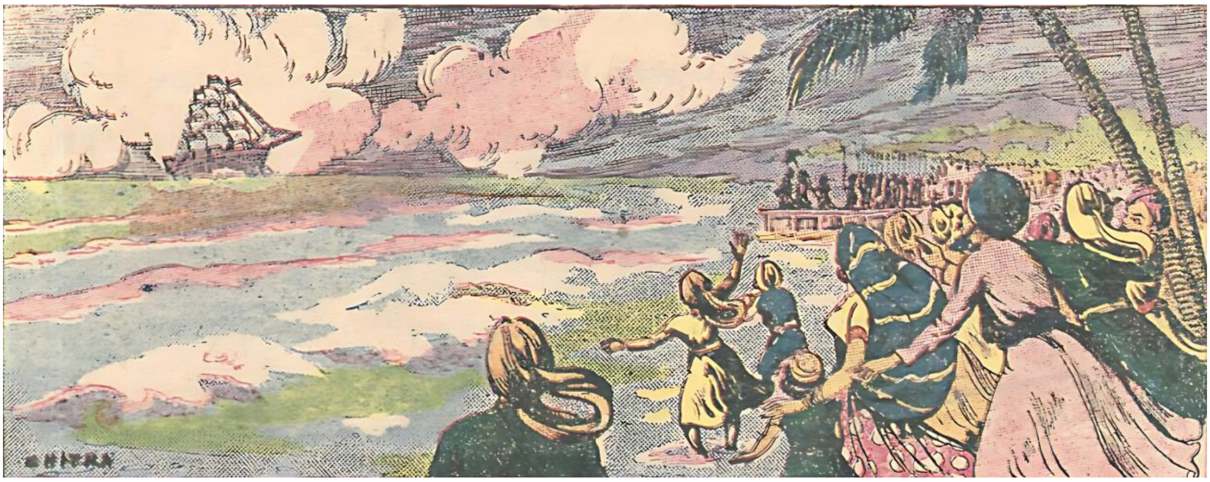

एक गाँव में कोई ग्वाला रहा करता था। उसके पास चार पाँच सौ बकरियाँ तो थीं, पर एक इञ्च अपनी ज़मीन न थी। यह सोचकर कि बकरियाँ फ़सल खायेंगी, गाँव के किसानों ने ग्वाले से कहा-"तुम गाँव में कम से कम दो बीघे ज़मीन खरीदो। वरना तुम गाँव में न रह पाओगे।"

ग्वाला बिचारा क्या करता? उसने गाँव के बाहर सिर्फ़ दो ही दो बीघे खरीदे। उसने उसमें जौ बोई। वह भी ठीक हुई।

थोड़े दिनों बाद ग्वाले की नज़र भी कम हो गई। ज़मीन का काम ग्वाले के लड़के के जिम्मे पड़ा। उसने भी पिता की तरह ज़मीन में जौ बोई।

खैर, इधर, धान्य लक्ष्मी, धन लक्ष्मी, धैर्य लक्ष्मी, " मैं बड़ी हूँ" कहती कहती लड़ती-झगड़ती जौ के खेत में आईं।

"इस ग्वाले के लड़के को देखो। थोड़ी-सी ज़मीन में कितनी ही मेहनत कर रहा है, पर कुछ फलता नहीं। अगर मैं इसके खेत में जाकर बैठ गई तो इसके सब कष्ट मिट जायेंगे।" कहती हुई धान्य लक्ष्मी ने खेत में प्रवेश किया।

"इसके कष्ट तू क्या हटा सकेगी? इसका वास्तव में फ़ायदा तो मैं करूँगी।" कहती हुई धन लक्ष्मी पैसे की गठरी का रूप धर गाँव के रास्ते में बैठ गई।

"अरे अरे ! तुम भी क्या पगली हो गई हो? अगर मैं इसके सिर पर जा बैठी, तो चाहे तुम कुछ भी करो, इसका कोई फ़ायदा न होगा।" कहती हुई धैर्य लक्ष्मी उसके सिर पर जा बैठी।

धान्य लक्ष्मी के खेत में घुसते ही फ़सल बहुत बढ़ गई। परन्तु धैर्य लक्ष्मी

श्री कपूरचन्द जैन

के सिर पर सवार होने के कारण ग्वाले ने सोचा कि उस तरह के फ़सल के कारण खेत ही खराब हो जायेगा।

यह बात पिता से कहने के लिये वह घर की तरफ़ गया। जब वह उस जगह पहुँचा, जहाँ धन लक्ष्मी पैसों की गठरी के रूप में पड़ी थी, उसे सूझा-"क्यों न आँखें बन्द कर चला जाये। देखें, कितनी दूर जा सकता हूँ।" यह सोचकर, गठरी पार कर जब तक वह २० फीट नहीं चला गया, उसने आँखें न खोलीं। उसने पिता से कहा कि देखते देखते सारी फ़सल खराब हो गई है। उसने ज़मीन बेच देने की ज़िद की। मगर पिता ने कहा कि उसे कोई खरीदेगा नहीं। जब निराश हो ग्वाले का लड़का खेत वापिस पहुँचा तो कोई व्यापारी उस खेत की ओर लगातार देख रहा था।

वह व्यापारी किसी और देश का था। उसने इस तरह की जौ की फ़सल कहीं न देखी थी। जब ग्वाले का लड़का मचान पर चढ़ रहा था तो व्यापारी ने पूछा-"क्यों भाई? यह तुम्हारा खेत है?" लड़के ने कहा- "हाँ।"

"क्या खेत बेचोगे?" व्यापारी ने पूछा। क्योंकि वह अच्छे दाम दे रहा था, लड़का मान गया। कुछ भी हो, अपना अधिकार दिखाने के लिये, धन लक्ष्मी उस लड़के की सहायता करने लगी।

उसने व्यापारी के दिमाग में भी एक और ख्याल सुझाया। उसकी प्रेरणा के अनुसार व्यापारी ने कहा-"अरे लड़के! अब तुम्हारे पास तो ज़मीन रही नहीं। मेरे पास ही नौकरी कर लो। तीस रुपये माहवार दूँगा। जो मैं कहूँ सो करना।" ग्वाले का लड़का मान गया। व्यापारी ने अपनी गाड़ियों पर से और सब समान

नीचे फिंकवा दिया और उन पर जौ के पौधे कटवाकर रखवा लिये।

लड़के को साथ लेकर चल दिया। जाते जाते वे एक शहर में पहुँचे। व्यापारी ने उस नगर के राजा के पास जाकर कहा-"देखा अपना यह जौ का गट्ठर? इस प्रकार की जौ संसार में कहीं नहीं है। आपने इसको अपने राज्य में लगवायी तो आनाज़ की कमी ही नहीं होगी। अगर आपने हौदा लगे हुये हाथी को दिया तो गाड़ी भर जौ के अंकुर दे जाऊँगा।" राजा मान गया। व्यापारी ने एक गाड़ी जौ व्यापारियों को बेचकर ग्वाले से गोटेदार कपड़े सिलवाकर दिये। उसको हाथी पर चढ़ाकर कुछ दिनों बाद वह एक और शहर में पहुँचा।

रास्ते भर व्यापारी कहता आया कि हौदे पर बैठा हुआ व्यक्ति सोने का महाराजा है और स्वयं वह उसका मन्त्री है। इसलिये उस नगर के राजा ने ग्वाले के लड़के का राजोचित स्वागत-सम्मान किया और एक सुन्दर महल में उनके रहने का प्रबन्ध किया।

व्यापारी ने जौ के बारे में सबसे कहा- "हमारे सोने के महाराज के राज्य में

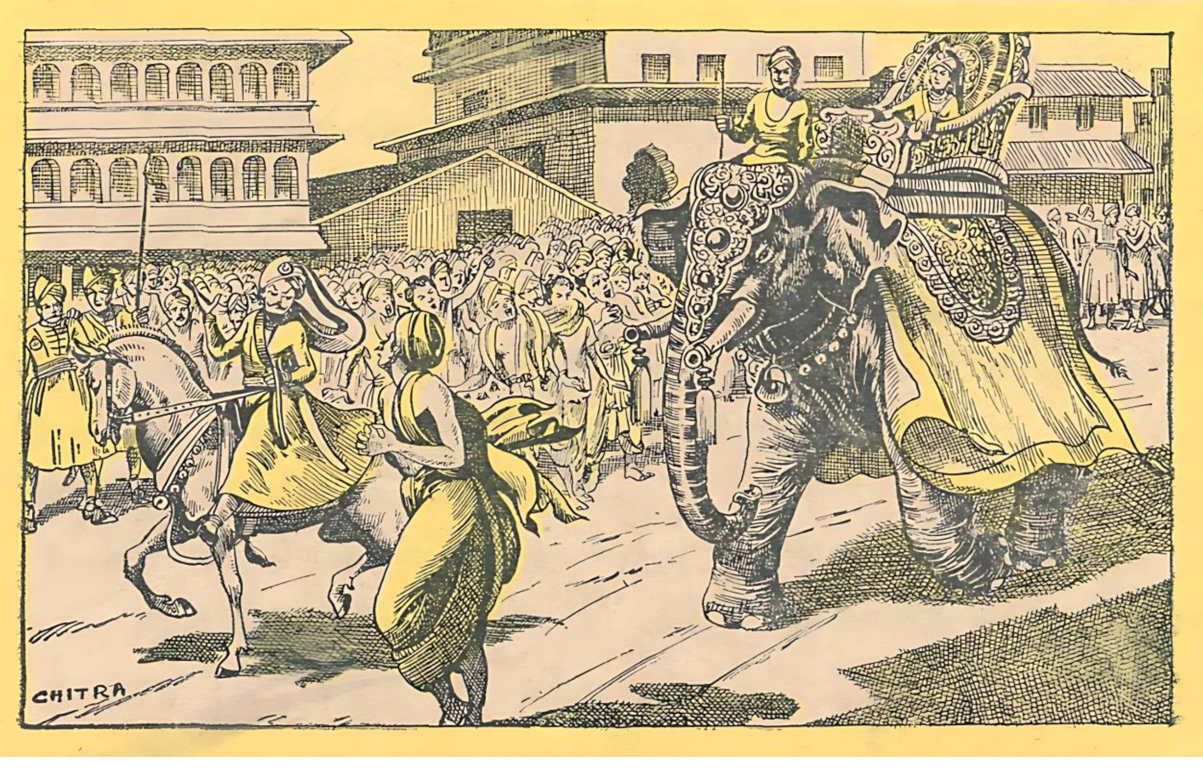

खराब से खराब ज़मीन में भी इस तरह की जौ पैदा होती है। इसीलिये इनके राज्य में सिवाय सोने के और कुछ नहीं दिखाई देता।"

राजा और रानी ने सोचा कि यदि इस मन्त्री को मना लिया गया तो इस महाराजा का विवाह अपनी लड़की से कर सकते हैं। उन्होंने मन्त्री को बुलाकर यह बात उससे कही। उसने कहा-"मैं महाराजा से कह कर देखूँगा।"

जब महल में जाकर व्यापारी ने यह बात छेड़ी तो ग्वाले का लड़का घबरा गया। वह कहने लगा-

"राजकुमारियाँ तो चुड़ैल होती हैं। मैं उनसे नहीं निभा सकता।"

"अरे पागल! मालूम है, तुम मेरे नौकर हो? जो मैंने कहा अगर तुमने नहीं किया तो हड्डी -पसली एक कर दूँगा। समझे?" व्यापारी आग बरसाने लगा। उसने राजा के पास जाकर विवाह का मुहूर्त भी निश्चित करवा दिया। परन्तु उसने कहा कि विवाह उनके देश की परम्परा के अनुसार ही होना चाहिये। राजा ने कोई आपत्ति न की।

मुहूर्त के समय, जब दूल्हे को लेने के लिये पालकी उसके महल पर भेजी गई, तो नौकरों ने उसको बाँधकर पालकी में रख दिया।

राजा और रानी ने सोचा-शायद यह इनके देश की परम्परा है। विवाह के समाप्त होते ही दूल्हे को शयनकक्ष में ले जाया गया।

"कमरे के बाहर तलवार लेकर दो सैनिकों को तैनात कीजिये। जब जब दूल्हे कमरे से बाहर आये, तब तब उसे तलवार से भोंकने का वे अभिनय करें।" व्यापारी ने कहा। राज-परिवार ने सोचा, शायद वह भी उनके देश की एक रीति होगी।

ज्योंही ग्वाले का लड़का शयनकक्ष में घुसा, वह काँपने लगा। "अरे, बाप रे बाप! यह काली माई का कोई मन्दिर है। बलि देने के लिये ही मुझे यों सजाया गया है।" वह सोचने लगा। उसने भागना चाहा, पर बाहर तलवार लिये सैनिक पहरा दे रहे थे।

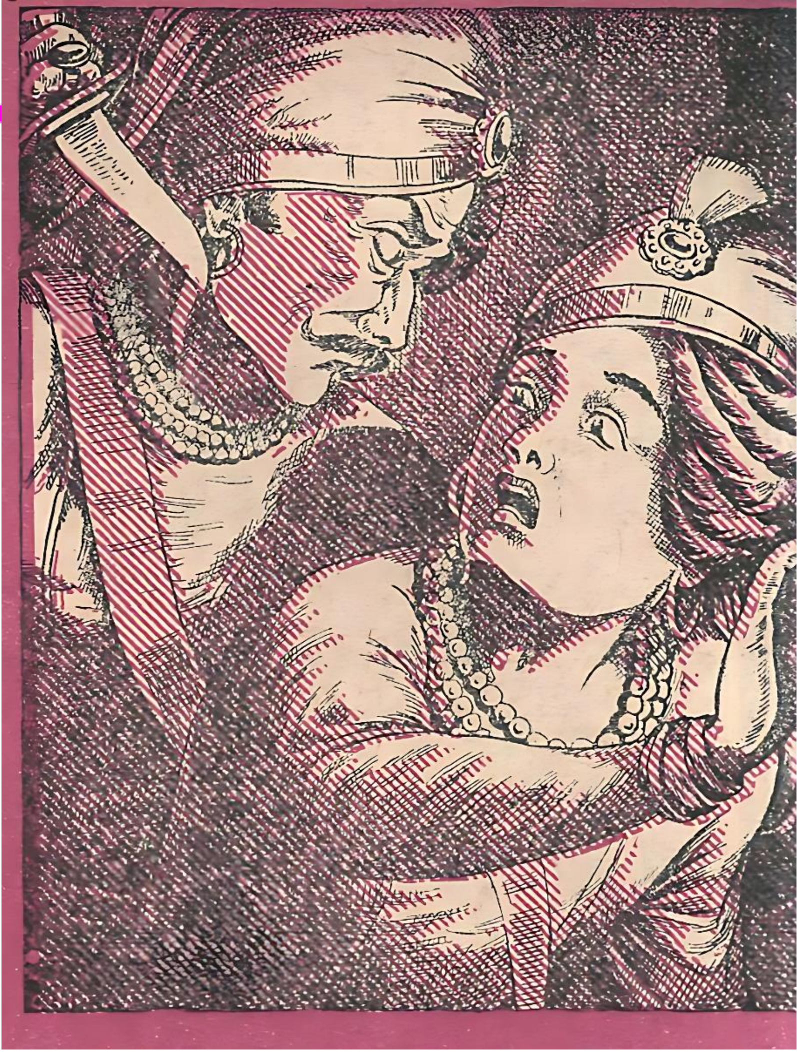

इस बीच में राजकुमारी ने शयनकक्ष में प्रवेश किया। तलवार लिये हुये सैनिक चले गये। गहनों से चमकती हुई राजकुमारी को देखकर, वह सोचने लगा-"अरे, बाप रे बाप! अब क्या होगा मेरा? काली माई ही मुझे खाने के लिये स्वयं चली आ रही है।" वह घबरा गया। उसने राजकुमारी को एक धक्का दिया और सीधा अपने महल की ओर भाग गया।

उसे देखते ही व्यापारी आग-बबूला हो उठा। "अरे बेवकूफ़! तेरी शादी एक राजकुमारी से करवाई और तू भागा आ रहा है। अक्ल है कि नहीं?" उसने ग्वाले के लड़के को खूब पीटा।

अगले दिन राजा ने व्यापारी को बुलाकर पूछा-"क्या बात है मन्त्री जी? आपके राजा हमारी लड़की को धक्का देकर चले गये। हम से क्या अपराध हुआ है?"

"अपराध तो कुछ भी नहीं हुआ है। रात मूसलाधार वर्षा हुई थी। ऐसा समय अच्छा नहीं समझा जाता है, इसलिये हमारे राजा नाखुश होकर चले गये।" व्यापारी ने कहा। बिना यह जाने कि रात को वर्षा हुई थी कि नहीं, राजा ने पुरोहितों को कोड़े लगवाये। "अच्छा मुहूर्त सोचकर बताओ।" राजा ने उन्हें आज्ञा दी।

उन्होंने रोते-धोते कहा-"क्षमा कीजिये। आज रात को अच्छा मुहूर्त है।"

दूसरी रात को भी ग्वाले का लड़का पहले की तरह शयनकक्ष से भाग आया;

और व्यापारी ने फिर उसकी खूब मरम्मत की। यह अपराध तूने दूसरी बार किया है। अगर तू फिर भाग कर आया तो तेरा सिर कटवा दूँगा।" व्यापारी ने कहा।

परन्तु उसने राजा के पास जाकर कहा-"पुरोहित एकदम बेअक्ल हैं। कल रात भी खूब वर्षा हुई थी।"

पुरोहितों को फिर कोड़े लगाये गये। "महाराज ! क्षमा कीजिये। हमें भी सन्देह था कि कल रात का मुहूर्त उतना अच्छा न था। आज रात तो बहुत अच्छी है।" तीसरे दिन फिर ग्वाले के लड़के को शयनकक्ष में प्रवेश कराया गया। यह सोचकर कि उसकी मौत-"काली माई" के हाथ से, नहीं तो व्यापारी के हाथ से बदी है, वह काँपता काँपता बैठ गया। "अब तो तुम दोनों की पोल खुल गई।" धैर्य लक्ष्मी ने बाकी दोनों लक्ष्मियों से पूछा। यह कहते कहते वह ग्वाले के लड़के के सिर पर से उतर आई। तुरन्त जो कुछ भय या सन्देह ग्वाले के लड़के के मन में थे, काफूर हो गये। उसमें धैर्य और साहस आ गया। "यह व्यापारी कितना भला आदमी है। मुझे पागल की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिये। मुझे राजा की तरह रहना चाहिये। यह क्या मैं उसकी पोल खोलने के लिये उतारू हो रहा हूँ?"

जब इस बार राजकुमारी आई तो उसने उठकर उससे हालचाल पूछे। राजकुमारी को बड़ी खुशी हुई।

अन्त में, धैर्य लक्ष्मी के अनुग्रह से, ग्वाले का लड़का राजा भी बन गया। व्यापारी मन्त्री बना।

तब से धैर्य लक्ष्मी के रास्ता दिखाये बग़ैर धान्य लक्ष्मी और धन लक्ष्मी कहीं नहीं जाते।

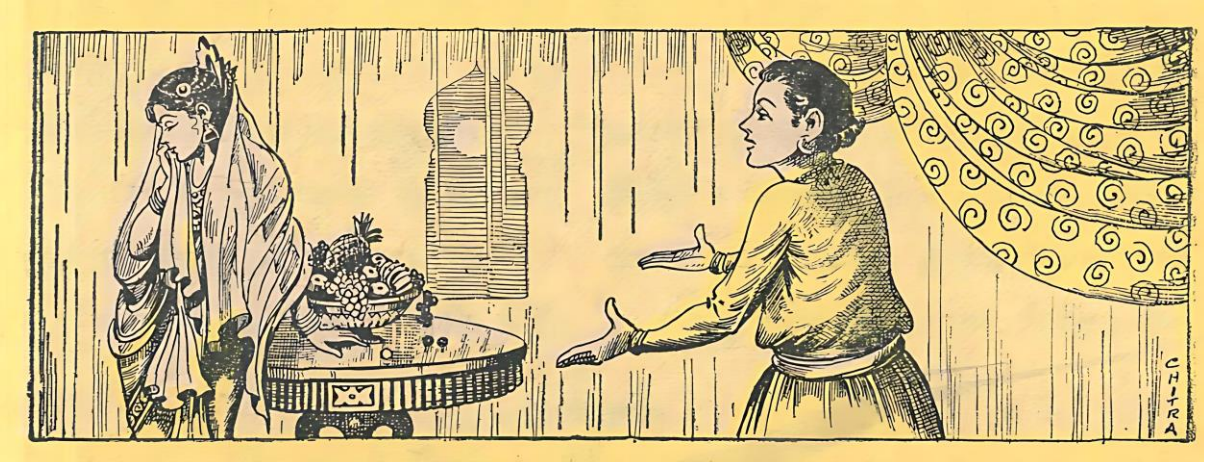

चोर का पता

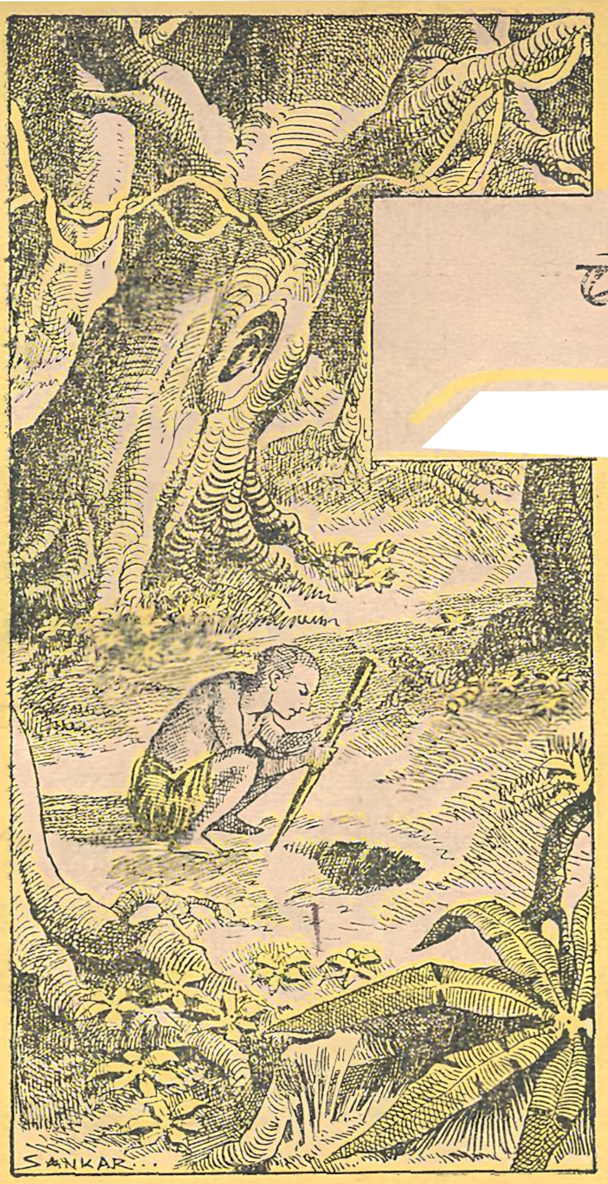

जब प्रसेनजित् श्रावस्ती का राजा था, दूर देश से एक ब्राह्मण नगर में रहने आया। सौभाग्य से एक धनी वैश्य व्यापारी के यहाँ उसको आश्रय मिल गया। वस्त्र, अन्न आदि के अतिरिक्त उसको खूब दान-दक्षिणा वगैरह भी मिलती थी। अकेला तो था ही, इसलिये खर्च कम था। उसने सौ मोहरें खरीदकर जमा कर ली। उनको हिफ़ाज़त से रखने के लिये उसने उन्हें जङ्गल में एक जगह गाड़ दिया।

न पत्नी-परिवार था, न भाई-बहन ही; सम्बन्धी भी न थे। इसलिये उस ब्राह्मण के प्राण हमेशा उन मोहरों पर ही रहते। वह रोज़ जङ्गल जाया करता और अपने धन को देखकर आया करता।

एक दिन जब वह जङ्गल में गया तो वहाँ मोहरें न थीं। कोई उन्हें निकाल कर चम्पत हो गया था। ब्राह्मण पागल-सा हो गया। रोता-पीटता शहर में पहुँचा। जो कोई मिला, उससे उसने अपनी मुसीबत कह सुनाई। किसी को न सूझा कि उसको कैसे दिलासा दिया जाय।

"जब मेरा पैसा ही चला गया तो मेरे जीने से ही क्या फायदा? नदी में जाकर आत्म-हत्या कर लूँगा।" कहता कहता ब्राह्मण नदी की ओर भागा। तभी राजा प्रसेनजित् नदी में स्नान कर चला आ रहा था। उसने आत्म-हत्या करनेवाले ब्राह्मण को देखा, उससे सारी बात मालूम कर ली। "ब्राह्मण! आत्महत्या क्यों करते हो? राज्य में अगर चोरी

डी. सुबोध कुमार

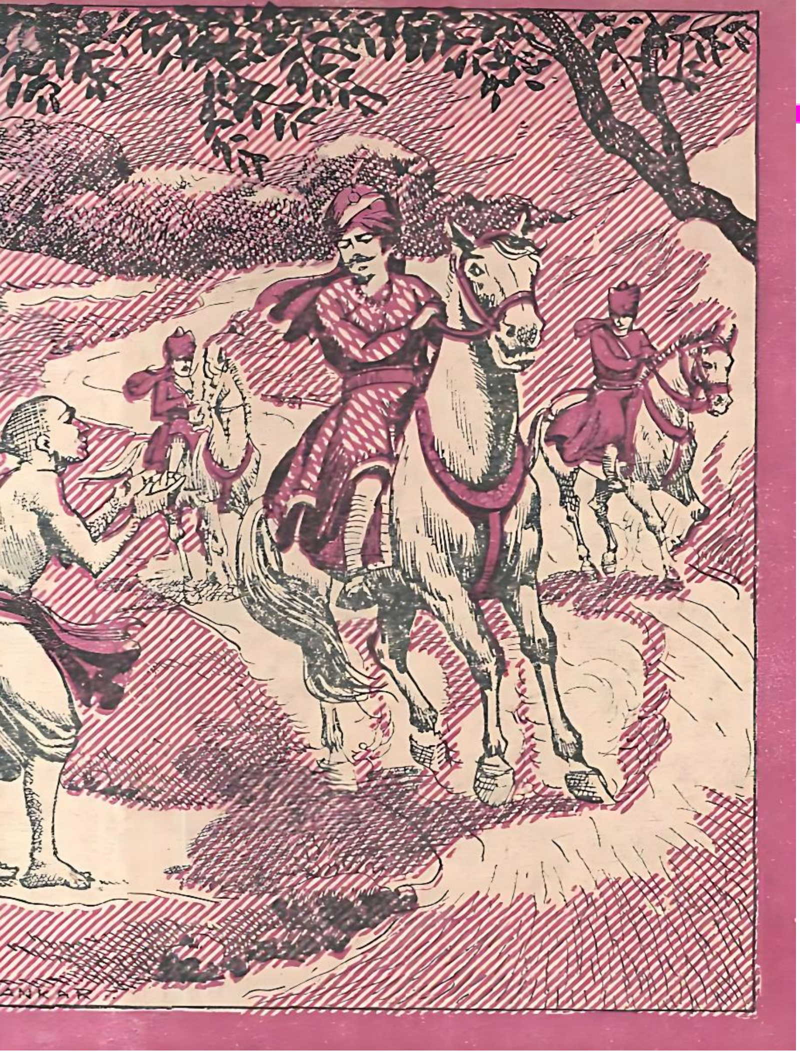

होती है तो उसका पता लगाने के लिये क्या मैं नहीं हूँ? जिसने तुम्हारा रुपया चुराया है, मैं उसे पकड़ूँगा, नहीं तो तुम्हारा धन मैं अपने ख़ज़ाने से दिलवा दूँगा। जहाँ तुमने यह रुपया गाड़ा था, क्या उस जगह की कोई निशानी है?" राजा ने पूछा।

"महाप्रभू! जहाँ मैंने पैसा गाड़ रखा था, वहाँ एक जङ्गली तौरी का पौधा था। अब

वहाँ वह भी नहीं है।" ब्राह्मण ने कहा।

जङ्गली तौरी का पौधा कैसे निशानी हो सकता है? वैसे पौधे तो बहुत हो सकते हैं।" राजा ने पूछा।

"नहीं, महाप्रभू! वहाँ एक ही जङ्गली तौरी का पौधा था।" ब्राह्मण ने कहा।

"तुमने वहाँ पैसा गाड़ रखा है, यह कितनों को मालूम है?" राजा ने पूछा।

"महाप्रभू! सिवाय मेरे पञ्छी तक कोई नहीं जानता। अगर किसी को कहना भी चाहूँ तो भला मेरा कौन है, जिससे मैं कहूँ?" ब्राह्मण ने कहा।

राजा अपने महल में आकर इस चोरी के बारे में सोचने लगा। चोर का पता लगाने का तरीका उसे सूझ गया। उसने मन्त्री को बुलाकर कहा-

"मन्त्री ! मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। तुरन्त वैद्यों से परामर्श करना आवश्यक समझता हूँ। शहर में जितने वैद्य हों, उन सब को बुलवाइये।"

शीघ्र ही राजमहल में सब वैद्य उपस्थित हुये। एक एक करके राजा ने उनको अपने . पास बुलाया और उनसे पूछा-"आज और कल तुमने किन किन रोगों के लिये दवाई दी है? किन किन बूटियों का उपयोग किया है?" उनका जबाब सुनकर राजा ने उन्हें भेज दिया। मन्त्री को, जो यह देख रहा था, राजा का मतलब समझ में न आया।

आखिर एक वैद्य ने कहा-"महाप्रभू! वैश्य शिरोमणि मातृदत्त के लिये मैंने जङ्गल तौरी का रस कल दिया था।"

राजा ने और गौर से पूछा-"ऐसी बात है? तो तुम्हें जङ्गल तौरी का पौधा मिला कहाँ?"

"जङ्गल से ढूँढ़-ढाँढ़कर मेरा नौकर ले आया था महाराज।" वैद्य ने कहा।

"अच्छा, तो उस नौकर को हमारे पास तुरन्त हाज़िर करो।" राजा ने कहा।

वैद्य के नौकर के आते ही राजा ने पूछा-"क्यों, जङ्गल तौरी के पौधे की जड़ में गड़े हुये हज़ार मोहरों का तूने क्या किया है?"

नौकर डर के मारे पीला पड़ गया। "मैंने घर में रख रखे हैं, महाराज।" उसने कहा।

"वे फ़लाने ब्राह्मण की हैं। उन्हें हिफ़ाज़त से उसे सौंप दे।" राजा ने हुक्म दिया। नौकर सलाम करता करता चला गया।

पर मन्त्री को, जो यह सब देख रहा था, यह न मालूम हुआ कि राजा ने मोहरों के चुरानेवाले को कैसे पकड़ा।

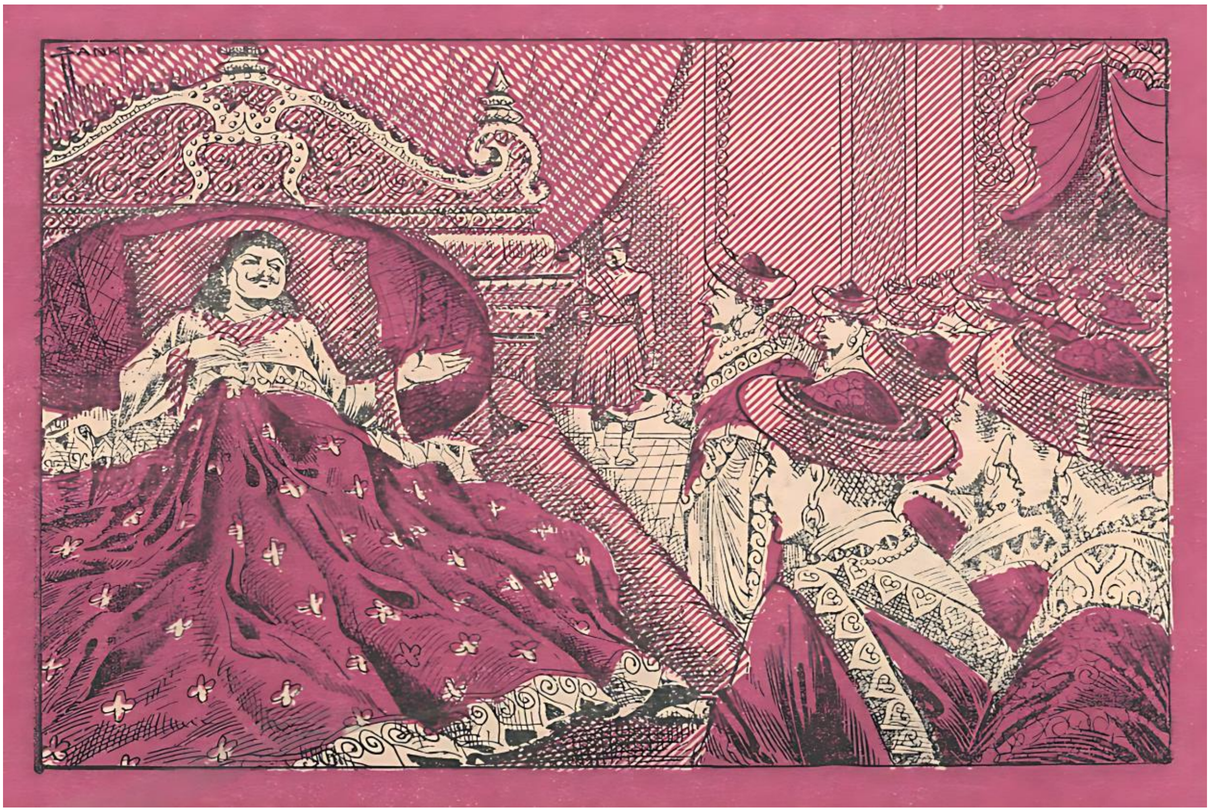

उसने राजा से पूछकर ही यह मालूम करना चाहा।

"महाराज! मुझे यह समझ में नहीं आ रहा कि आपने इतनी आसानी से कैसे चोर पकड़ लिया?" मन्त्री ने सविनय पूछा।

राजा ने हँसकर कहा-

चोरी के बारे में जो कुछ ब्राह्मण ने कहा था, उसे सच मानकर ही मैंने चोर को पकड़ने की सोची थी। नगर में लाखों आदमियों में से एक ही आदमी वह चोरी कर सकता था। और ब्राह्मण यह कह भी रहा था कि गड़े हुए पैसे के बारे में किसी को भी न मालूम था। उस जगह पर बिना यह जाने कि वहाँ रुपया गड़ा हुआ है, किसको खोदने की ज़रूरत होगी? यानी जिसको जङ्गल तौरी की ज़रूरत हो उसी को ही।

आस पास कहीं जङ्गली तौरी का पौधा न था। यह बात वह ब्राह्मण ही बता रहा है। यह सच ही होगा, यह भी मैंने विश्वास कर लिया। अलावा इसके अगर कोई धन के लिये ही वह जगह खोदता तो जङ्गली तौरी का पौधा वहीं छोड़ जाता। जङ्गली तौरी के पौधे के लिये खोदनेवाला ही दोनों चीज़ों को ले जा सकता है।

जंगली तौरी के पौधे से किन्हें काम रहता है? वैद्यों को। इसीलिये मैंने सब वैद्यों को बुलवाया था। जब मुझे जङ्गली तौरी के पौधे से औषधी बनानेवाले वैद्य का मालूम हुआ तो मुझे चोर का भी मालूम हो गया। इसमें क्या उलझी हुई बात है मन्त्री?"

यह बात सुन मन्त्री मन ही मन प्रसेनजित की बुद्धिमता की सराहना करने लगा।

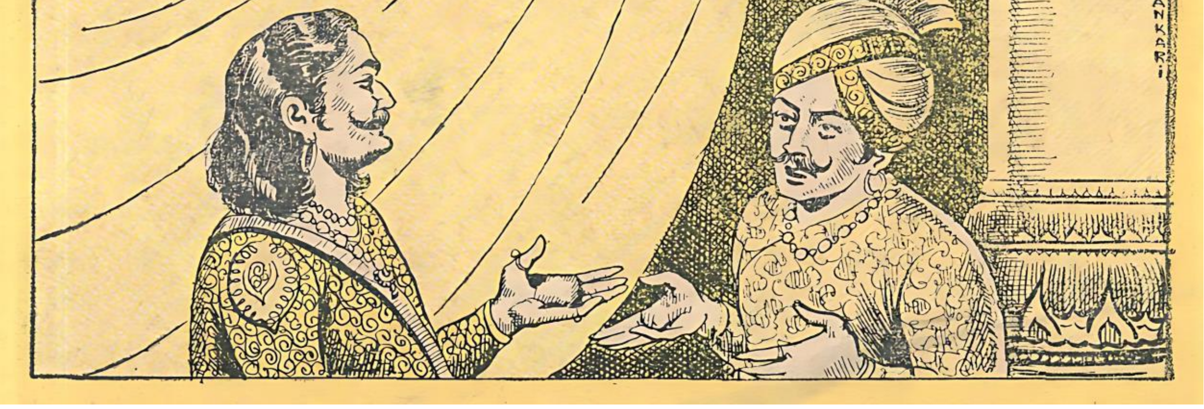

रत्नपुर नामक नगर में शिव और माधव नाम के दो दोस्त रहा करते थे। उन दोनों ने एक दिन उज्जयिनी जाना चाहा, क्योंकि उन्होंने सुन रखा था कि उज्जयिनी के राजा के पुरोहित, शङ्कर स्वामी ने बहुत सा रुपया जमा किया हुआ था। शिव माधव ने सोचा कि उसका रुपया-पैसा लेकर आराम से ज़िन्दगी काटेंगे।

शिव पक्के ब्रह्मचारी का वेष बनाकर पहिले पहुँचा। सिप्रा नदी के किनारेवाले एक मठ में वह रहने लगा। रोज़ वह शरीर पर कीचड़ लगाकर नदी में नहा, किनारे पर शीर्षासन किया करता था। फिर शिवालय में जाकर घण्टों पूजा-पाठ किया करता। दोपहर होने पर सिर्फ तीन घरों में भिक्षा माँगता और भिक्षा को तीन भागों में बाँटता। एक भाग कौवों को देता, एक अभ्यागतों को, और एक भाग स्वयं खाता।

कुछ दिनों बाद राजपूत का वेष बनाकर माधव भी उज्जयिनी पहुँचा। वह अपने साथ कुछ सामान और नौकर-चाकर भी लाया। एक अच्छी जगह पर वह रहने लगा। उज्जयिनी पहुँचते ही माधव सिप्रा नदी में स्नान करने के लिये गया। वहाँ उसने शिव को शीर्षासन करते हुये देखा। साष्टाङ्ग नमस्कार कर उससे कहा-

"महाशय! फिर कितने दिनों बाद आपके दर्शन करने का भाग्य प्राप्त हुआ है।" शिव ने माधव को देखने के लिये आँखें भी न खोलीं। माधव वापिस चला गया।

उस रात को, शिव और माधव एकान्त में मिले। शङ्कर स्वामी की सम्पत्ति का अपहरण करने के लिये उन्होंने एक चाल सोची।

श्री कुमारी दीप्ति दत्त

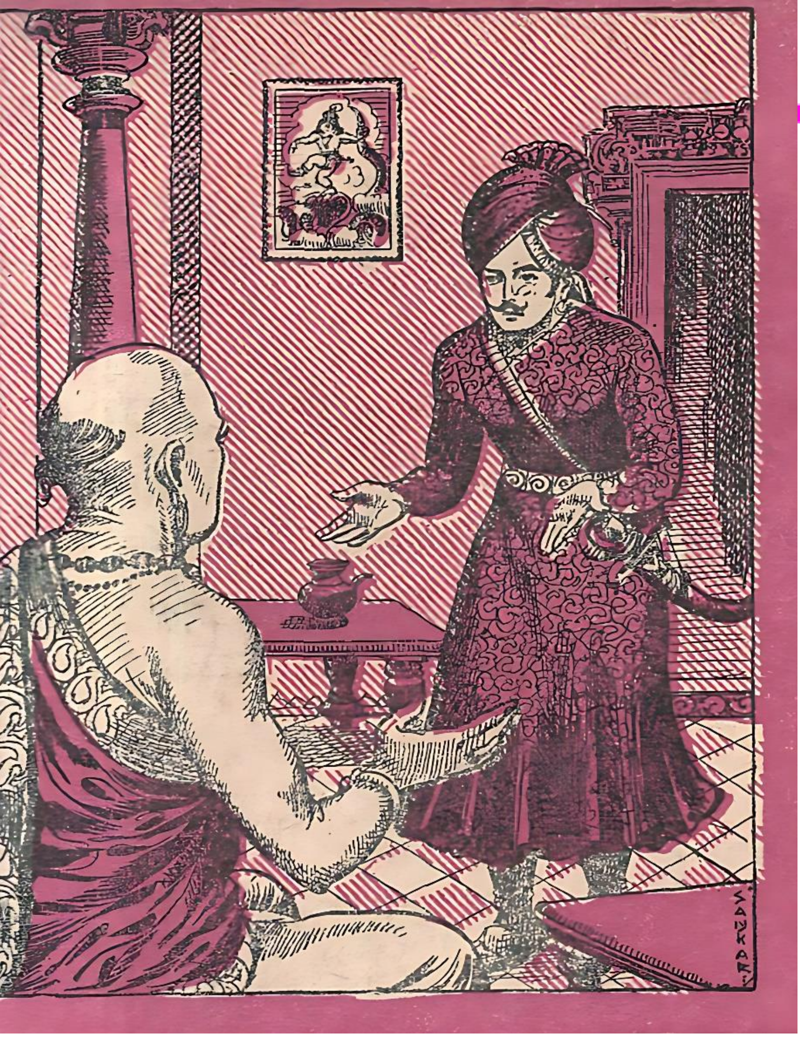

सबेरे होते ही माधव ने नौकर के हाथ धोतियाँ उपहार में शङ्कर स्वामी के पास भिजवाईं और कहला भेजा- "माधव नाम का राजपूत आपका दर्शन करने के लिये बहुत दूर से आया हुआ है।" शङ्कर स्वामी बहुत ही लालची था। जब कोई राजा को कोई भेंट देता, वह स्वयं उसका आधा हड़प लेता। और कहीं ऐसा न हो, लोग उसकी बदनामी करने लगे, उसने इस तरह इकट्ठे किये हुये धन को सात घड़ों में रखकर ज़मीन में होशियारी से गड़वा दिया था।

जब शङ्कर स्वामी ने माधव की भेजी हुई धोतियाँ देखीं तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई। उसने सोचा कि कोई नादान, बेचारा आ पहुँचा है। उसने उसको अन्दर बुलवाया। माधव ने शङ्कर स्वामी को नमस्ते कर कहा- "पण्डित जी! मैं दक्षिण का हूँ। मुझे मेरे सम्बन्धियों ने हरा दिया और मैं अपनी बपौती लेकर यहाँ आ गया हूँ। मुझे रुपये-पैसे की तो कोई दिक्कत नहीं है। पर देखिये, कभी मेरे हाथ में भी शक्ति और ओहदा था, हुक्म चलाने की आदत-सी है, इसलिये मेरे नौकर-चाकर कहते हैं कि दरबार में कोई नौकरी कर लूँ। अगर आपने मेरी सहायता की तो मैं भी आपकी मदद करूँगा। मेरे पास हीरे-मोती वगैरह भी हैं।

हीरे मोती का नाम सुनते ही शङ्कर स्वामी फूला न समाया। वह माधव को राजा के पास ले गया, और सिफ़ारिश कर उसने उसको दरबार में अच्छी नौकरी भी दिलवा दी।

"यह तो आपके लिये परदेश है। रहने के लिये अच्छी जगह न मिलेगी। इसलिये आप हमारे घर ही रहिये।" शङ्कर स्वामी ने माधव से कह कर, उसको मना लिया।

माधव शङ्कर स्वामी के घर रहता, रोज़ दरबार में जाया करता, रात को घर आ जाता। कभी कभी घड़े में से नकली हीरे-मोती निकालकर शङ्कर स्वामी को दिखा कर कहा करता कि वे बहुत कीमती हैं, उनका मिलना मुश्किल है। शङ्कर स्वामी भी उसकी बातों पर विश्वास किया करता। कुछ दिन गुज़र गये। माधव ने अपचन का बहाना कर भोजन करना छोड़ दिया। अगले दिन उसने चारपाई पकड़ी। चार पाँच दिनों में वह सूखकर काँटा हो गया। उसने शङ्कर स्वामी को बुलाकर कहा- "पण्डित जी! मेरा समय नज़दीक आ गया है। मरने से पहले मैं अपना सारा धन किसी अच्छे ब्राह्मण को देकर पुण्य कमाना चाहता हूँ। किसी योग्य ब्राह्मण को बुलवाये।"

शङ्कर स्वामी बहुत सारे ब्राह्मणों को बुलाकर लाया। पर माधव कहा करता-"और भी अच्छे ब्राह्मण को बुलवाइये।" आखिर शङ्कर स्वामी हताश हो गया।

जान-पहचान के लोगों ने शङ्कर स्वामी को सलाह दी- "उस मठ में एक ब्रह्मचारी तपस्या किया करता था। सारी उज्जयिनी

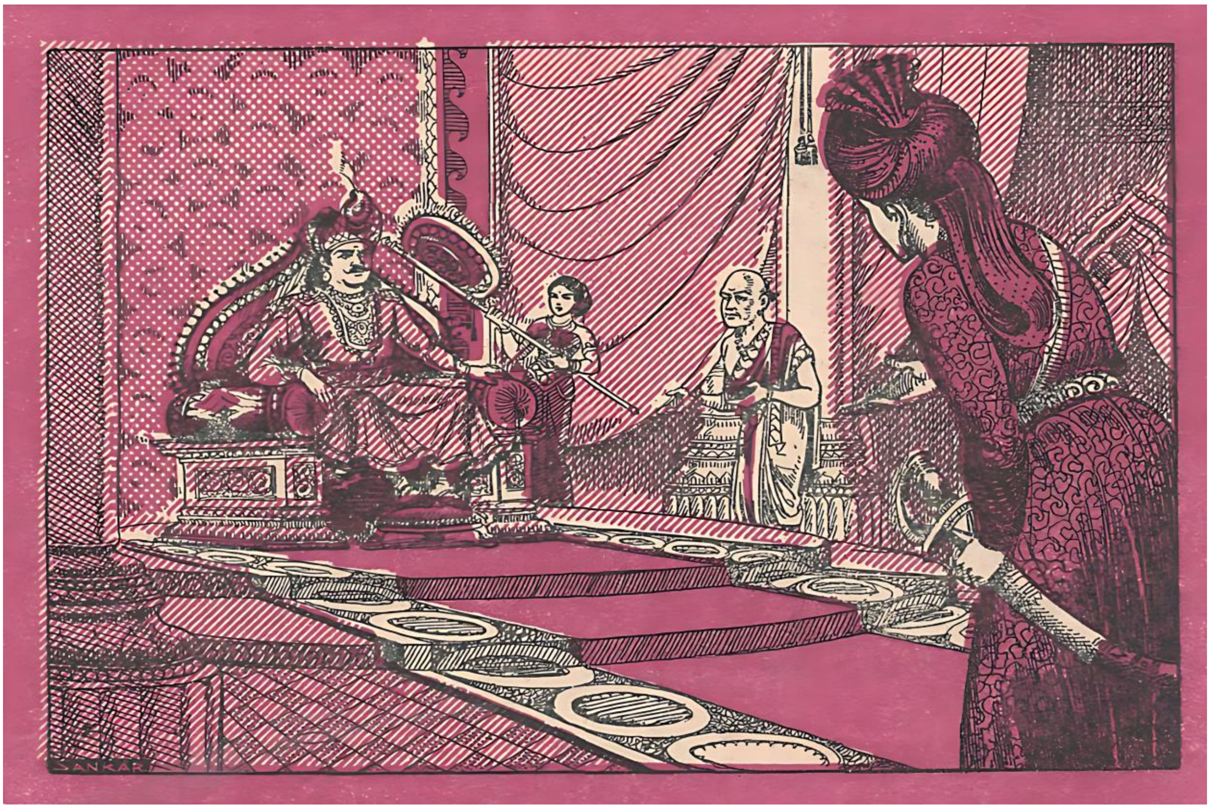

को छान देने पर भी उससे अच्छा योग्य व्यक्ति न मिल सकेगा।"

शङ्कर स्वामी ने मठ में जाकर शिव को देखकर कहा-" महाराज, आइये, रत्नदान ग्रहण कीजिये। शीघ्र ही पधारिये।"

शिव ने हँसकर कहा-"मैं तो भिक्षा पर जीवन निर्वाह करनेवाला ब्रह्मचारी हूँ। मुझे भला रत्नों की क्या ज़रूरत? जाइये। किसी ग्रहस्थी को खोजकर दीजिये।"

"ऐसी बात नहीं है। वह आदमी सिवाय आपके किसी और को नहीं देना चाहता। फिर यह भी कहाँ लिख रखा है कि आप हमेशा इसी तरह ब्रह्मचारी बने रहें? रत्नों को लेकर शौक से विवाह कीजिये।" शङ्कर स्वामी ने कहा।

"यहाँ मैं किसी को जानता पहचानता नहीं हूँ। आप कृपा करके जाइये। मुझे कौन लड़की देगा?" शिव ने कहा।

"मैं अपनी लड़की दूँगा। अब तो ठीक है? जल्दी कीजिये। वह आदमी मरने को है।" शङ्करस्वामी शिव को साथ ले गया। और अपने हाथ से ही उसने माधव के नकली हीरों से भरे घड़े को उसे दान में दिलवाया।

माधव का झूठा रोग भी कम हो गया। उसने दवाई खाना छोड़ दिया। सप्ताह भर में वह पहले की तरह अच्छा हो गया। उसने कहा-"इस दान के कारण ही तो मैं मौत के मुहँ से निकल गया हूँ।"

अपने वचन के अनुसार शङ्करस्वामी ने अपनी लड़की का विवाह, शिव के साथ कर दिया। विवाह के होते ही माधव भी शङ्कर स्वामी का घर छोड़कर और किसी जगह रहने लगा। उसकी जगह शिव आकर रहने लगा।

कुछ दिनों बाद शिव ने ससुर से कहा-"मैं कब तक यहाँ पड़ा रहूँ? सिवाय दान में दिये हुये हीरों से भरे घड़े के मेरे पास कुछ नही है। इसलिये आप उसे रखकर हमें नक़द दे दीजिये। मैं और मेरी पत्नी अलग कहीं अपना घर बसा लेंगे।"

"उन हीरों की कीमत कौन जाने बेटा?" शङ्कर स्वामी ने कहा।

"उनकी कीमत से मेरा क्या काम? उस घड़े में क्या रखा है, यह भी मैं नहीं जानता हूँ। उसे आप ही ने दिया था, आप ही ले लीजिये। आपके पास जो कुछ पैसा है, हमें दे दीजिये। मैं सोचूँगा कि मुझे वही दान मिला है। अगर आपको कुछ ज्यादा मिल भी गया तो आप कौन से पराये हैं?" शिव ने कहा।

शङ्कर स्वामी ने कुछ न कहा। उसने भूमि में गाड़े हुये धन से भरे सात घड़े निकाले और शिव को दे दिये। उससे रसीद ले ली। जो कुछ लिखा-पढ़ी करनी थी, सो भी कर ली। शिव ने अपनी पत्नी के साथ अपना अलग घर बसाया। उस धन को शिव और माधव ने आपस में आधा आधा बाँट लिया।

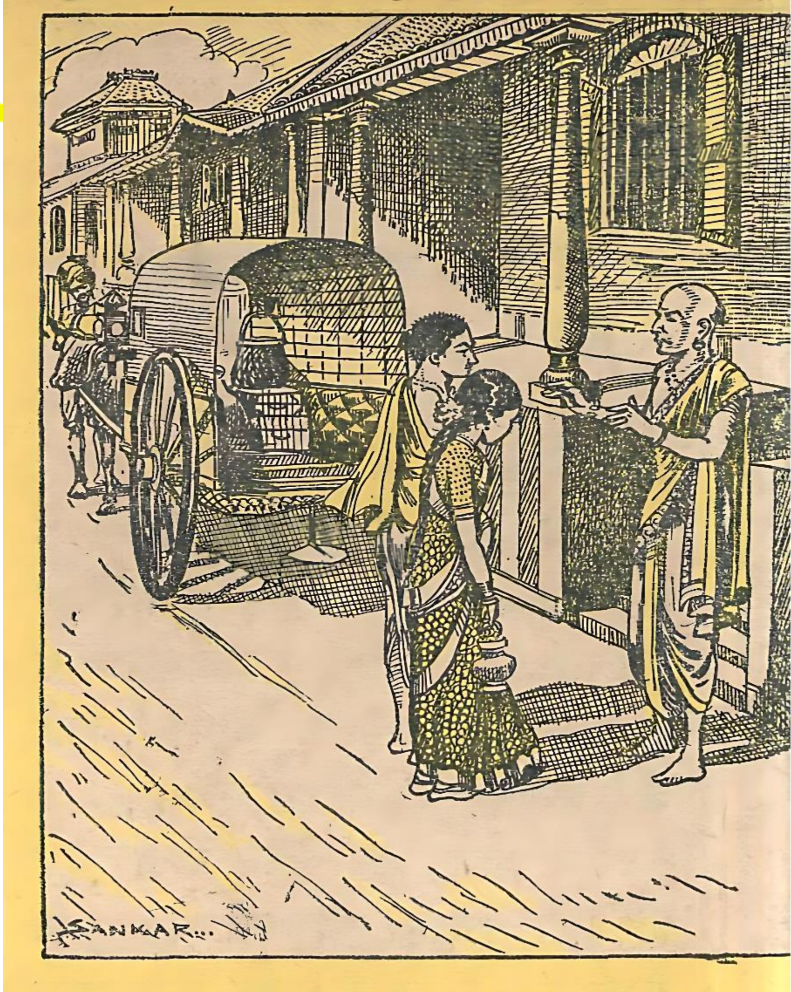

और कुछ दिन गुज़र गये। शङ्कर स्वामी को सूझा, क्यों न कुछ हीरों को बेच-बाचकर घड़ों को फिर से भरा जाय। उसने माधव के दिये हुये घड़े में से हीरों का हार निकाला और जौहरी के पास कीमत निश्चित करने के लिये ले गया।

"पण्डित जी, यह सोना नहीं है, न हीरे ही। किसी धूर्त ने शीशे के टुकड़ों पर पीतल की कलाई पोत कर आपको धोखा दे दिया है।" जौहरियों ने कहा।

यह सुनते ही शङ्कर स्वामी का कलेजा थम-सा गया। वह जल्दी जल्दी घर गया।

और घड़े में रखे सब जेवर-जवाहारातों को जौहरियों को दिखाने के लिये ले आया। जल्द उसे मालूम हो गया कि उनमें एक तोला भी सोना न था।

शङ्कर स्वामी रोता-धोता दामाद के पास गया। "कितना धोखा! मेरा पैसा मुझे वापिस कर दो।" उसने दामाद से कहा। उसे उसने बताया कि घड़े में सिर्फ़ शीशे के टुकड़े थे, और कुछ न था।

"तो क्या वह मेरी गल्ती है? हीरे-मोती बताकर मुझे क्यों वैसा दान दिलवाया? मैं मज़े में तपस्या किया करता था। तुमने ही मुझे इस गृहस्थ के गढ़े में धकेला है। मैं और क्या करूँ? मैंने तो उस घड़े को खोलकर भी न देखा था। उसमें हीरे थे या पत्थर, यह तो तुम्हें मालूम होना चाहिये, नहीं तो उस माधव को। मैं क्या जानूँ? मुझ से कुछ मत पूछो।" शिव ने कहा। शङ्कर स्वामी माधव के पास भागा। माधव ने भी गुस्सा दिखाया।

"उस घड़े में हमारे बाप-दादाओं के जमा किये हुये जेवर-जवाहारात थे। मैंने उसको आपत्ति के समय एक अच्छे ब्राह्मण को दे दिया। और उस दान का ही इतना प्रभाव था कि मैं मरते मरते बच गया। शीशे पत्थर ले जाकर क्या मैंने किसी को जेवर-जवहरात कहकर बेचा है? यह ससुर और दामाद का मामला है। तुम्हीं दोनों आपस में जिम्मेवार हो। निबट लो।"

यह बात सुन शङ्कर स्वामी अपना-सा मुँह लेकर रह गया। उसे मालूम हो गया कि गलती उसी की थी। उसके लोभ ने उसका ही सत्यानाश कर दिया था। वह पछताता पछताता घर चला गया।

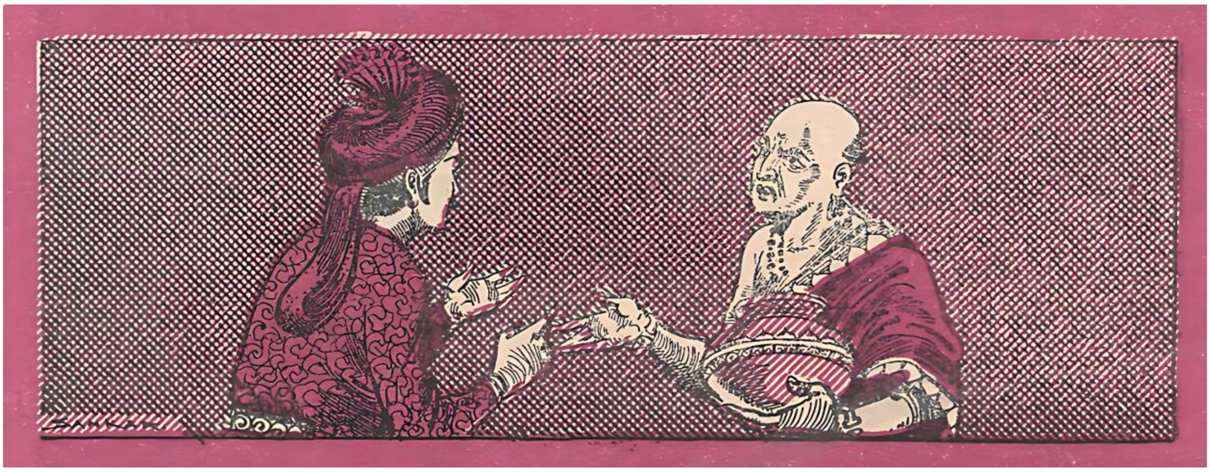

काश्मीर देश में प्रवर नाम का एक नौजवान रहा करता था। वह एक अमीर का लड़का था। अच्छा पढ़ा-लिखा और समझदार था। उसे यात्रा करने की सूझी। आवश्यक धन और कीमती वस्त्र लेकर वह यात्रा पर निकल पड़ा। दुर्भाग्य से उसका चोरों से पाला पड़ गया। दिन दहाड़े चोरों ने उसको लूट लिया। उसका सारा रुपया-पैसा, कपड़े वगैरह सब छीन लिये। प्रवर के कपड़े पहनकर चोर चम्पत हो गये और अपने कपड़े छोड़ते गये। वह बिचारा करता तो क्या करता? उसने चोरों के कपड़े पहन लिये। दो-तीन दिन तक सफ़र कर शाम को वह एक शहर में पहुँचा।

अन्धेरे में प्रवर शहर की चारों बड़ी सड़कों पर घूमता-भटकता रहा। उससे न किसी ने कोई बात कही, न कुछ पूछा ही। अपनी हालत बताकर उसने जब किसी से खाना माँगने की सोची तो उसे शर्म आ गई। आखिर वह राजमहल के पासवाले अस्तबल में पहुँचा। भूख और प्यास के कारण वह बेहोश-सा हो गया।

उस देश के राजा का नाम जयसेन था। उसके एक लड़की थी, जिसका नाम काञ्चनवल्ली था। सौन्दर्य में वह तिलोत्तमा थी, और विद्या आदि में सरस्वती। जब वह सयानी हुई तो राजा ने उसकी पढ़ाई-लिखाई बन्द कर दी और उसकी सगाई भी कर दी। परन्तु काञ्चनवल्ली इस हठ पर थी कि जब तक उसको उसके अनुरूप वर न मिलेगा, तब तक वह विवाह ही न करेगी। पिता का खोजा हुआ वर उसको कतई पसन्द न था। इसलिये काञ्चनवल्ली ने घर

श्री पण्डित घनश्याम प्रसाद मिश्र

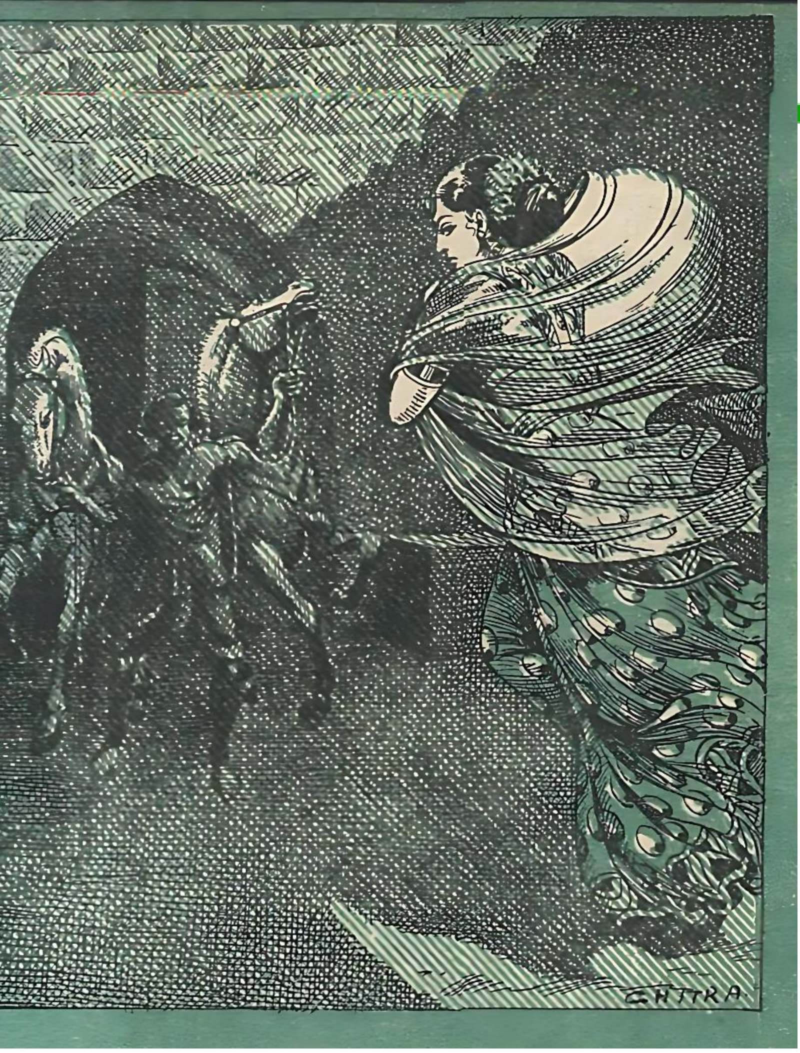

से भागने की ठानी; तब तक वापिस न आने का निश्चय किया, जब तक उसको योग्य वर न मिल जाये।

परन्तु यह काम बिना दूसरों की सहायता के वह अकेली न कर सकती थी। इसलिये राजकुमारी ने अपनी सेविका द्वारा मन्त्री के लड़के के पास ख़बर भिजवाई। मन्त्री के लड़के और काञ्चनवल्ली ने एक ही गुरु के यहाँ साथ शिक्षा पाई थी। छुटपन से दोनों एक दूसरे को चाहते थे। काञ्चनवल्ली ने मन्त्री के लड़के के पास कहला भेजा कि आधी रात के समय, राजमहल के बाहर, अस्तबल के पास वह दो घोड़ों को लेकर तैयार रहे। यह ख़बर पाकर भी मन्त्री का लड़का राजकुमारी की सहायता न कर पाया; चूँकि उस दिन राजा के अन्तःपुर में नृत्य का प्रबन्ध किया गया था। उसका पिता ज़िद कर उसको वहाँ ले गया था।

जिस नृत्य ने मन्त्री के लड़के को न आने दिया था, उसी ने राजकुमारी को भाग जाने का अच्छा मौका दिया। उसने सिर दर्द का बहाना किया। जब और लोग नृत्य देखने में मस्त थे, वह ज़ञ्जीरों की मदद से राजमहल की चारदीवारी पार कर गई और अस्तबल के पास पहुँची। अन्धेरे में उसको प्रवर मजे में सोता हुआ दिखाई दिया। उसको मन्त्री का लड़का समझकर राजकुमारी ने बाँह पकड़कर उठाया और कहा- "उठो, उठो! झट अन्दर जाकर दो घोड़े ले आओ।"

अङ्गड़ाइयाँ लेता हुआ प्रवर उठा। वह अन्दर से दो घोड़े ले आया। काञ्चनवल्ली एक घोड़े पर चढ़ गई। दूसरे पर सवार होकर प्रवर को साथ साथ आने के लिये कहा। दोनों थोड़ी देर में शहर पारकर हवा से बातें करने लगे।

इतने में सबेरा हुआ। काञ्चनवल्ली ने अपने घोड़े को एक तालाब के पास लाकर रोक दिया। थोड़ी देर में प्रवर भी पीछे पीछे उसके साथ आ मिला। उसको देखते ही काञ्चनवल्ली का मुँह फीका पड़ गया। रात भर जो उसके साथ आया था, वह मन्त्री का लड़का नहीं था। उस आदमी की शक्ल-सूरत से लगता था, जैसे कोई चोर हो। फटे-पुराने मैले कपड़े पहिने हुये था। दाढ़ी बढ़ी हुई थी। अपनी गलती जानकर काञ्चनवल्ली को बहुत दु:ख हुआ, पर वह कर ही क्या सकती थी? अगर अब घर वापिस जाती तो पिता दण्ड देता।

काञ्चनवल्ली ने सिर उठाकर प्रवर की तरफ़ अच्छी तरह देखा तक नहीं। वह पत्थर की तरह बैठी रही। प्रवर ने भी उससे बातचीत न की। उसने भी नहीं बताया कि सचमुच वह कौन था। वह पासवाले पेड़ से दो दाँतून तोड़ लाया। एक राजकुमारी के सामने फेंक दी। दोनों ने दाँत साफ़ किये।

नित्य कृत्य पूरे कर दोनों फिर घोड़ों पर सवार हुए। थोड़ी देर में वे नदी के किनारे पहुँचे। नदी के किनारे एक कश्ती छूटनेवाली ही थी। कुछ

लोग उस पर चढ़े हुए थे। एक बुढ़िया कश्ती पर मुफ़्त बैठने के लिये किश्तीवाले से प्रार्थना कर रही थी। कश्तीवाले ने बिठाने से इनकार कर दिया और कश्ती ले ही जानेवाला था कि नये मुसाफ़िरों को देखकर वह रुक गया।

प्रवर ने देखा कि कश्तीवाले ने बुढ़िया को मुफ़्त ले जाने से इनकार कर दिया था। उसके पास भी कानी-कौड़ी न थी। वह काञ्चनवल्ली की तरफ़ दया भरी दृष्टि से ताकने लगा। काञ्चनवल्ली उसके देखने का मतलब समझ गयी और अपनी

आँचल में से एक अशर्फी निकालकर उसने प्रवर के पैरों के पास फेंक दी। प्रवर ने कश्तीवाले को अशर्फी देते हुए कहा-"लो, यह लो, हमारे साथ इस बुढ़िया को भी ले चलो।" कश्तीवाला मान गया।

किनारे पर पहुँचकर बुढ़िया ने प्रवर से कहा-"बेटा, तुमने मुझे भी पार करवा दिया। मेरा इस संसार में कोई नहीं है। मुझे भी अपने साथ रख लो, दो चार दिन तुम्हारे लिये खाना पकाकर अपना ऋण चुका दूँगी।"

"अच्छा! तो आओ, हमारे साथ तुम भी ज़िन्दगी काटना, दादी।" प्रवर ने कहा।

दोपहर होते तीनों एक नगर में पहुँचे। उस दिन वे धर्मशाला में रहे। वहीं खा-पीकर सो रहे। अगले दिन प्रवर बाज़ार में जाकर व्यापारियों से कहने लगा-"महाशयो! मैं ज्योतिष जानता हूँ। आप मुझे पैसा दीजिये, मैं आपको आज का भविष्य बता दूँगा, लाभ-नष्ट के बारे में जानकारी दूँगा।" कई व्यापारियों ने उसे अपनी जन्म तिथि बतायी। उसने उसके

आधार पर उनका भविष्य बताया, व्यापारियों ने बदले में उसे पैसा दिया।

जब अगले दिन प्रवर बाज़ार गया तो बहुत से व्यागरी अपना भविष्य जानने के लिये उसके चारों ओर इकट्ठे हो गये। उसने उनका भविष्य बताया। उसकी कही हुई बातें सच भी निकलीं। उसके लिये आमदनी का एक रास्ता निकल आया। उसने उस शहर में एक मकान किराये पर ले लिया और वहीं रहने लगा।

प्रवर की प्रसिद्धि दिन प्रति दिन बढ़ती गई। यह जानकर कि हीरे-मोतियों के परखने में प्रवर माहिर है, एक चौधरी ने उसको बड़ी तनख्वाह पर नौकर रख लिया। बुढ़िया समझ रही थी कि काञ्चनवल्ली सचमुच उसकी पत्नी थी।

एक दिन उस देश के राजा के पास दक्षिण देश से कोई व्यापारी अति मूल्यवान हीरा लाया। राजा हीरे को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ। उसने उसका मूल्य पूछा। राजा की इच्छा को देखकर व्यापारी ने कहा- "करोड़ रुपये।" बिना पारखियों की सलाह के राजा इतना रुपया खर्च कर हीरा खरीदना नहीं चाहता था। इसलिये उसने शहर के जौहरियों

को बुलवाया और उनसे हीरे का दाम पूछा। जो जिसके जी में आया, उसने वही दाम बताया; किसी ने पिछत्तर लाख कहे तो किसी ने दो करोड़। वह जौहरी भी आया, जिसके यहाँ प्रवर नौकरी कर रहा था। प्रवर को हीरा दिखाकर उसने उसका दाम पूछा।

"इसका दाम सिर्फ़ एक रुपया है। वह भी इसको काटने-छाँटने की मज़दूरी के लिये।" प्रवर ने बताया।

"सिर्फ़ कह देने से क्या होता है, साबित करके दिखाओ।" वह व्यापारी

गला फाड़ फाड़कर चिल्लाने लगा। प्रवर ने लोहे की एक पटरी मँगवाई और हीरे को उस पर मारा। क्योंकि वह केवल एक एक शीशे का टुकड़ा था, झट उसके टुकड़े टुकड़े हो गये। सब को यह देखकर आश्चर्य हुआ।

उसी दिन राजा ने प्रवर को अच्छे वेतन पर अपने दरबार में नौकर रख लिया। क्योंकि उसकी सलाह के कारण राजा को कई बार लाभ हुआ था, इसलिये उसकी शोहरत बढ़ने लगी।

इसके थोड़े दिनों बाद राजा का मन्त्री मर गया। उसकी जगह भरने के लिये, राजा को प्रवर के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति न दिखाई दिया। राजा ने उसको मन्त्री के पद पर नियुक्त कर उसका सम्मान किया।

जब वह मन्त्री बना दिया गया तो सब कोई उसकी निजी बातों के बारे में भी उत्सुकता दिखाने लगे। रानी ने धोबिन से यह मालूम कर लिया कि मन्त्री की पत्नी बहुत ही सुन्दर है। प्रवर के घर में भी वही धोबिन काम करती थी। मन्त्री की पत्नी बहुत ही सुन्दर है, यह राजा को भी रानी द्वारा मालूम हुआ।

"प्रवर तो आज मन्त्री हुआ है। पर जब वह मामूली आदमी था, उसका इतनी सुन्दर स्त्री से कैसे विवाह हुआ?" राजा को सन्देह होने लगा। स्वयं यह देखने के लिये कि मन्त्री की पत्नी वास्तव में कितनी सुन्दर है, राजा ने एक चाल चली। एक बार उसने प्रवर को महल में दावत दी और रानी द्वारा भोजन परोसवाया।

राजा का मतलब प्रवर समझ गया। उनका आतिथ्य स्वीकार करने के बाद यह उसके लिये आवश्यक था कि वह भी राजा को, अपने घर में दावत दे और लोग

जिसे उसकी पत्नी समझ रहे हैं, उससे भोजन परोसवाये। पर जब उसकी वह पत्नी नहीं है, तो कैसे वह किसी को बुलाकर उससे कहे- "देखो, इन्हें भोजन परोसो।"

इसी उधेड़बुन में प्रवर लेटा हुआ था कि बुढ़िया ने आकर कहा-"उठो, उठो, बेटा! आओ खाना खा लो।"

"दादी, मुझे भूख नहीं लग रही है, तुम लोग खा लो।" प्रवर ने कहा। काञ्चनवल्ली अपनी सूक्ष्म बुद्धि से जान गई कि उसी के कारण प्रवर किसी समस्या में उलझा हुआ है।" जो कुछ करवाना चाहें, कह कर करवा क्यों नहीं लेते, दादी? फ़ालतू माथापच्ची से क्या फ़ायदा?" उसने कहा।

प्रवर यह बात सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुआ। भोजन के लिये बैठते हुये उसने कहा-"बात यह नहीं है दादी। आज राजा ने मुझे भोजन के लिये बुलाकर रानी द्वारा भोजन परोसवाया। उनको दावत देकर हम उनका अगर आतिथ्य न करें, तो क्या अच्छा होगा?"

"मैं कोई ऐसी मूर्ख नहीं हूँ कि खाना आदि भी न बनाना न आये। कह दो

दादी कि मैं उस रानी से कोई कम नहीं हूँ।"

अगले दिन प्रवर ने राजा को भोजन का न्योता दिया। काञ्चनवल्ली ने भरसक कोशिश कर अच्छा खाना तैयार किया। एक प्रकार की साड़ी, जेवर, वेणी पहन कर उसने पहिले खाना परोसा। फिर अन्दर जाकर दूसरे क्षण में, एक और साड़ी, जेवर वेणी आदि पहन भोजन परोसा।

राजा ने सन्तोष के साथ पेट भर भोजन किया। घर जाकर राजा ने रानी से कहा-"हमारे मन्त्री की एक पत्नी नहीं, दो पत्नियाँ

हैं। दोनों हीरे जैसी हैं। क्या सौन्दर्य! क्या नज़ाकत!"

रानी ने कहा-"परसों समुद्र में स्नान करने के लिये मन्त्री को अपनी पत्नियों को साथ लेकर आने के लिये कहिये।"

प्रवर के सामने अच्छी समस्या पैदा हो गई। पराई स्त्री से रसोई बनवाकर दूसरों को भोजन बँटवाना तो ऐसी कोई बड़ी गलती नहीं है, पर साथ स्नान करने के लिये कहना, क्या अच्छा होगा? अगर पहले ही कह देता कि विवाह नहीं हुआ है तो बात इतनी दूर पहुँचती ही नहीं।

वह तो उसका नाम तक नहीं जानता था, फिर समुद्र में स्नान करने के लिये कैसे ले जाता?

यही बात सोचता प्रवर लेटा हुआ था कि बुढ़िया ने फिर प्रवर को भोजन के लिये बुलाया। "मुझे भूख नहीं है दादी! तुम लोग खा लो।" प्रवर ने कहा। "दादी! इनसे यह तो पूछो कि छोटी-मोटी बात पर ये उपवास क्यों किया करते हैं? जो एक काम कर सकती है तो क्या दूसरा काम नहीं कर सकती? जो बिठाकर पाल-पोस रहे हैं, उनको कह कर काम

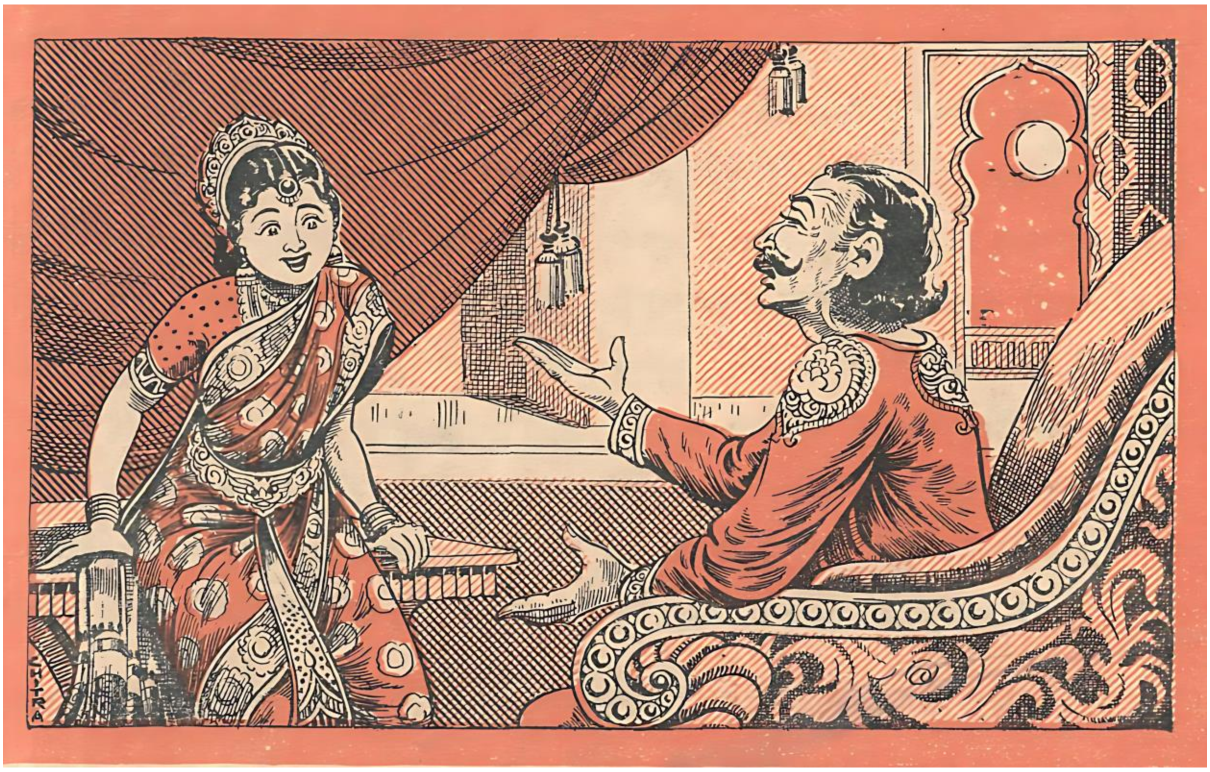

करवाने में क्यों आपत्ति है? पूछो दादी।" काञ्चनवल्ली ने कहा।

प्रवर ने राजा की इच्छा के बारे में दादी से कहा।

"यह कौन-सी ऐसी बड़ी समस्या है दादी? सात पालकियाँ, सात साड़ियाँ, सात जाकेटें, एक ही तरह के सात जोड़ी जेवर मँगाने के लिये कहो। समुद्र के किनारे सात दरवाज़ों वाला तम्बू लगाने के लिये कहो।" काञ्चनवल्ली ने कहा।

मन्त्री की पालकी के साथ साथ सात पालकियाँ आईं। एक में काञ्चनवल्ली बैठी हुई थी और बाकी में, उसके वस्त्र, गहने, वगैरह रखे हुये थे।

जब राजा और रानी नहाने की पोशाक पहिनकर स्नान कर रहे थे, काञ्चनवल्ली तम्बू के पहले दरवाज़े में से एक पोशाक पहन कर निकली और प्रवर के साथ स्नानकर वापिस चली गई। फिर थोड़ी देर वाद, दूसरी पोशाक पहनकर खेमे के दूसरे दरवाज़े से आई और स्नान करके चली गई।

यह सब देख रानी ने कहा-"मन्त्री की तो सात पत्नियाँ हैं और सब की सब बहुत सुन्दर हैं।"

अगले दिन रानी ने सेविका को सात गोटेदार साड़ियाँ, और अन्य उपहार देकर कहा-"इनको मन्त्री की पत्नियों को देकर उनके नाम मालूम करके आओ।"

यह जानकर कि रानी ने दासी के हाथ उपहार भेजे हैं; काञ्चनवल्ली ने बुढ़िया को कुछ कहकर उसके पास भेजा। बुढ़िया ने दासी से कहा- "रानी गल्ती कर रही हैं। मन्त्री जी की आठ पत्नियाँ हैं। उनके नाम वहीं हैं, जो कृष्ण की पत्नियों के हैं।"

दासी रानी के पास जाकर आठवीं पत्नी के लिये भी उपहार लायी। काञ्चनवल्ली

ने आठों पोशाकों को एक एक करके पहना और भिन्न भिन्न गले से दासी ने से बातचीत कर, और उपहार लेकर चली गई।

कुछ दिनों बाद, काञ्चनवल्ली ने बुढ़िया को खूब समझा-बुझाकर कहा कि भोजन करते समय प्रवर को हर चीज़ अधिक परोसे। "यह क्या दादी? आज इस तरह परोस रही हो? यह सब खाने के लिये है या फेंकने के लिये?" आश्चर्य से प्रवर ने बुढ़िया से पूछा।

"अगर ज्यादा है तो कह दो दादी कि और भी खानेवाले हैं।" काञ्चनवल्ली ने परदे में से कहा।

तब जाकर प्रवर को काञ्चनवल्ली के दिल की बात मालूम हुई। जब वह भोजन कर बैठा, तो तश्तरी में काञ्चनवल्ली ने पान-सुपारी लाकर दी।

"हमारी शादी कब है?" प्रवर ने पूछा।

"देखिये। मैं अपने योग्य वर ढूँढ़ने के लिये घर से निकली थी। भगवान ने मुझे उसी समय आपको दिखाया। पर मैंने आँखें मूँद रखी थीं। हीरे को भी शीशे का टुकड़ा समझे हुई थी। निस्सहाय स्थिति में आपके साथ चली आई। पर आपने किञ्चित मात्र भी मेरी मर्यादा भङ्ग न की। आपसे बढ़कर उदार व्यक्ति मुझे इस संसार में और कहाँ मिलेगा? आप तो नहीं जानते होंगे, पर मैं बहुत दिनों से आपकी पत्नी ही हूँ।" काञ्चनवल्ली ने कहा।

यह सुन प्रवर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने राजा से कहा कि वह विवाह करने जा रहा है। राजा काञ्चनवल्ली की होशियारी पर चकित रह गया।

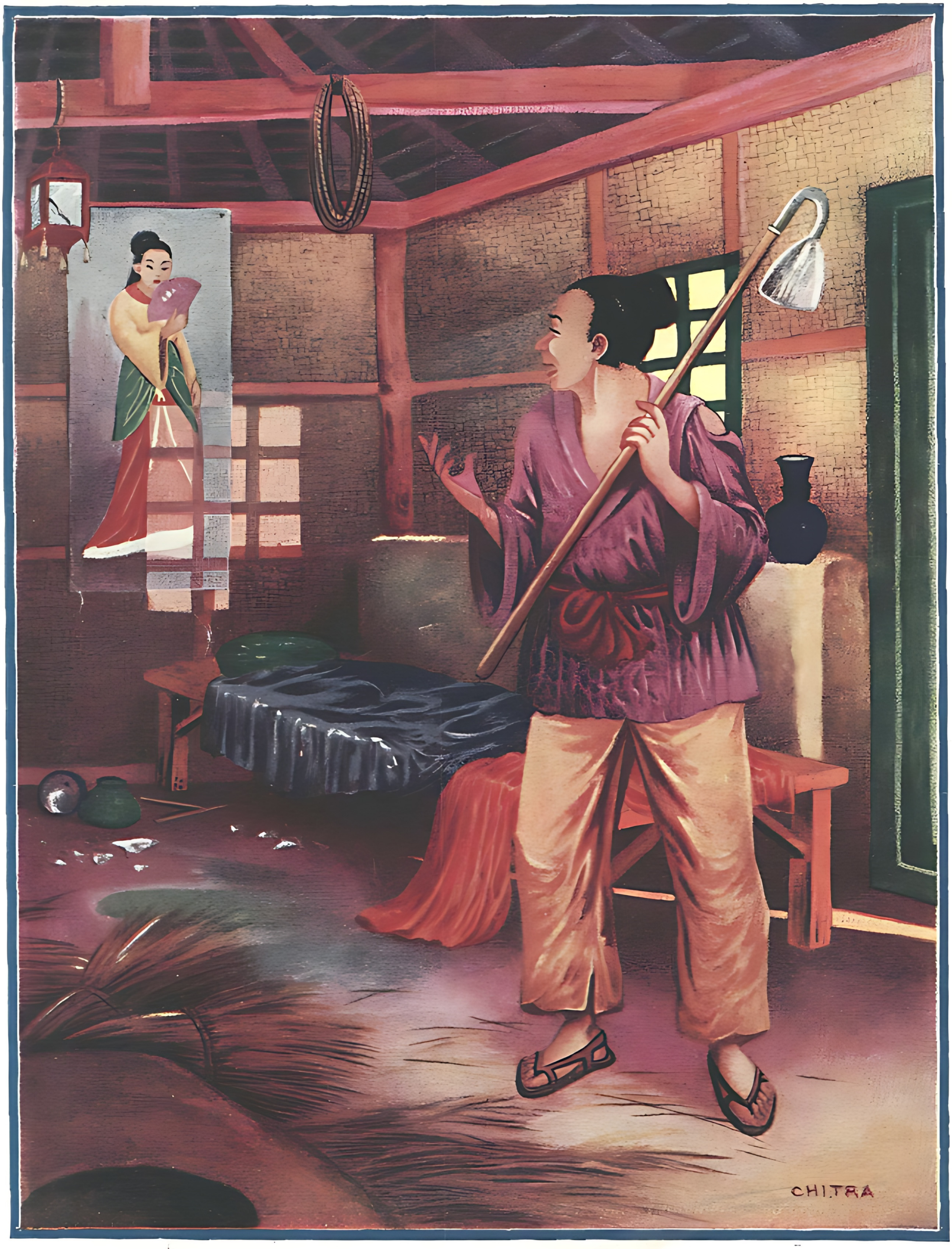

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – १